सिद्धयोग

2018

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

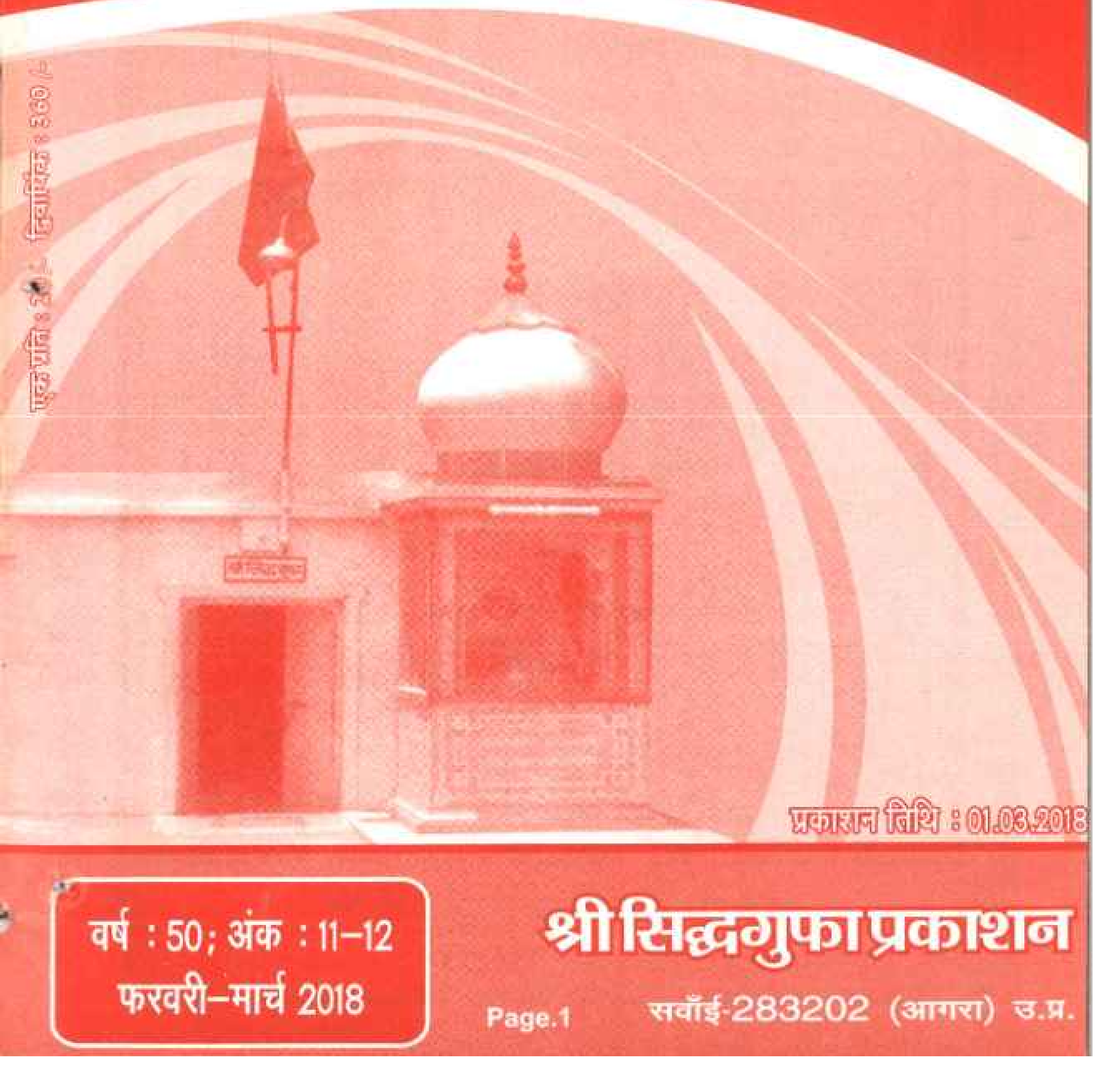

एक प्रति : [illegible]/- द्विवार्षिक : 360/-

प्रकाशन तिथि : 01.03.2018

वर्ष : 50; अंक : 11–12
फरवरी–मार्च 2018

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

धर्मोऽस्य मूलान्यएवः प्रकाण्डो
वित्तानि शाखाच्छादनानि कामाः।
यशांसि पुष्पाणि फलं च पुण्य–
मसौ सदाचारतरुर्महीयान्।। (वामन पुराण)

सदाचारी रूपी महान् वृक्ष का मूल धर्म है। काण्ड (तना) आयु है, शाखा धन है, पत्र कामना है। और फल पुण्य है। इस प्रकार यह कल्पतरु महामहीयान है।

◆ ◆ ◆

अनाचारस्तु मालिन्यमत्याचारस्तु मूर्खता।
विचाराचारसंयोगः सदाचारस्य लक्षणम्।। (बोधसार)

अनाचार से मनुष्य के चित्त में मलिनता होती है और आवश्यकता से अधिक आचार करना मूर्खता (या दम्भ) कहा गया है। अतः विचारपूर्वक जो आचार किया जाता है, वही सदाचार कहलाता है।

◆ ◆ ◆

सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारच्चानरः।
श्रद्दधानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति।।
(महाभारत अनुशासन पर्व 104/74)

समस्त लक्षणों से हीन होता हुआ भी जो सदाचारी और श्रद्धालु है और जो दूसरों पर दोषारोपण नहीं करता, वह सौ वर्षों तक जीवित रहता है।

◆ ◆ ◆

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।
(कठोपनिषद् 1/2/24)

प्राणी जब तक दुराचार से निवृत नहीं होता, इन्द्रिय दमन नहीं करता और उसका चित्त शान्त नहीं होता, तब तक वह केवल ब्रह्मज्ञान से भी परमात्मा की प्राप्ति नहीं कर सकता।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष :50
अंक : 11–12

फरवरी–मार्च
2018

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

कर्पूरगौरं करूणावतारं
संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा वसंतं हृदयारविन्दे
भवं भवानिसहितं नमामि।।

अर्थात्

गौर वर्ण, गले में सर्प, परम कारूणिक, विश्व के मूल कारण, हृदय में सदा विराजमान पार्वती–शिव को मेरा प्रणाम।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 11
3. श्रीमद्भागवत में योग–परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह 14
4. प्रभू जी ने लगाई फटकार – जगदीश राए बंसल 18
5. अपनी असली पहचान – स्व. आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा 21
6. गंगापुर सिटी में बही योग की गंगा 26
7. सिद्धयोग शिविर दतिया समाचार 28
8. पाप कर्मी खुशहाल क्यों देखे जाते हैं ? – डॉ. जे.पी.शर्मा 30
9. ईश्वर प्रणिधान अथवा भक्तियोग – श्री पूर्णचन्द शास्त्री 33

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.1000.00

योग साधक के लिए अनुपालनीय नियम

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

देखो! एक योगी जो अपने को उत्थान की ओर ले जाना चाहता है उसके लिए कुछ आवश्यक नियम भी होते हैं। उन नियमों पर चलकर ही वह अपना आध्यात्मिक विकास कर सकता है। काल चक्र, जग चक्र और युग चक्र को एक साथ घुमाने वाले मेरे तुम्हारे और सब प्राणियों के आत्मा श्री कृष्ण चन्द्र ने गीता में उन नियमों का संकेत दिया है। मैं अपने हर योग प्रचार कार्यक्रम में भगवान के इन वचनों को दोहराया करता हूँ। वे वचन हैं–

''विविक्त सेवी लाघ्वाशी यतवाक्कायमान सः
ध्यान योग परो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।
अहंकार बलं दर्प काम क्रोधं परिग्रहम
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।।''

अर्थात् भगवान् ने साधक के लिए पहली बात कही है 'विविक्त सेवी' एकान्त में रहे। एकान्त में किसको रहना चाहिये? एकान्त में उसे रहना चाहिये जिसका ध्यान लगता हो, जिसकी अन्तर्मुखी वृत्ति बन गई हो। सिद्धान्त की बात एक और भी है–

'वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणाम्,
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि य प्रवृवते
निवृत्त रागस्य गृहं तपोवनम्।

अर्थात् जो रागी लोग हैं या विषयी व्यक्ति हैं, उनको वन में भी विषय लग जाता है। किन्तु जो निन्दित कर्म में प्रवृत नहीं होता, अपनी पाँचों इन्द्रियों को संयमित रखता है तथा जिसका विषयों के प्रति राग छूट गया है उसके लिये घर ही तपोवन है। इसलिए जो विषयी लोग हैं, उनको समाज में ही रहना चाहिए।

'लघ्वाशी' हल्का आहार करना चाहिये ताकि आलस्य निद्रा न सताये। **'सतवाक्कायमानसः'** योगी को अपनी वाणी पर नियन्त्रण रखना चाहिए। कम बोलना चाहिये, सत्य बोलना चाहिये। 'यतकाय' शरीर पर नियन्त्रण हो, प्रत्येक चेष्टा युक्त व संयमित हो **'सतमानसः'** अपने मन पर नियन्त्रण रखे। योगी ध्यान करता–करता ऊँची स्थिति को पा जाता है। उस समय यदि मन पर नियन्त्रण नहीं है तो वह किसी का भला करेगा, किसी का बुरा करेगा। मैं तुम्हें इससे सम्बन्धित एक घटना सुनाता हूँ। अमृतसर में दो पढ़ने वाले लड़के थे। उनमें से एक श्री प्रभु जी के चरणों में आ गया था। दीक्षा ले ली। योगी ध्यानी बन गया। दूसरा यूँ ही भटकता था, प्रभु जी का निन्दक ही था। उसने उस ध्यानी लड़के की पुस्तकों का ट्रंक चुरा लिया। समझाने पर भी वह अपनी गलती को नहीं मानता था। ध्यानी लड़का जब ध्यान में बैठता था तो वह देखता था कि उसका तीसरा नेत्र खुल गया है और उस लड़के पर क्रोध की दृष्टि जाती है। उसने ध्यान से उठकर के यह बात श्री प्रभु जी को बताई। प्रभु जी ने कहा–तुम आठ दिन तक ध्यान में नहीं बैठना नहीं तो उसका अनिष्ट हो जायेगा। वह आठ दिन तक ध्यान में नहीं बैठा। आठवें दिन उसने प्रभु जी से ध्यान में बैठने के लिए पूछा–प्रभुजी अन्य व्यक्तियों के साथ बातचीत में व्यस्त थे। उन्होंने सरल भाव से कहा–बैठ जाओ। वह लड़का ध्यान में बैठ गया! कई दिनों का ध्यान प्रवाह रुका हुआ था। मन एकाग्र होते ही वह लड़का सामने दिखाई दिया। बड़ी भद्दी हरकतें करता हुआ दिखाई दिया। इससे उसका क्रोध और बढ़ गया फिर इसने देखा कि उसके तीसरे नेत्र से एक चिन्गारी सी निकली और उस लड़के पर पड़ गई। यह दृश्य दिखाई देने के बाद वह लड़का ध्यान से उठ गया और श्री प्रभु जी के पास जाकर कहने लगा प्रभु जी! आज तो इस प्रकार से हो गया। प्रभु जी कहने लगे "बस, ठीक है, हम तुम्हें शक्ति देते रहें और तुम दुनिया का अनिष्ट करते रहो। हमने तुमसे कहा था कि ध्यान में नहीं बैठना फिर क्यों बैठे?" उस बेचारे ने पूछ तो लिया था। खैर! हम लोग उस लड़के को देखने के लिए गये। वहाँ जाकर देखा वह लड़का पागल हो गया था उसका दिमाग खराब हो गया। उसने अपनी सारी पुस्तकों को आग लगा दी थी, फिर उसने अपने कपड़े भी जला दिये, अपने कमरे में भी आग लगाने जा रहा था। किन्तु आस पड़ोसियों ने उसे पकड़ लिया। वे लोग उसे पागल खाने ले जा रहे थे। हमने उसे ले जाने नहीं दिया। उसे नेति कराई, नाक से दूध पिलाया सिर को मला, मालिश आदि कराई, वह थोड़ा ठीक हो गया। इसलिये भगवान का आदेश है कि मन पर कन्ट्रोल रखो। मन से भी किसी के अहित का चिन्तन न करें। **'ध्यान योग परो नित्यम्'** नित्य ध्यानयोग का अभ्यास करो। मैं तुम्हें रोज–रोज कहता हूँ प्रातः 5 बजे से 7 बजे तक अपने ध्यानाभ्यास में अवश्य बैठा करो। रात्रि को भी सोने से पूर्व कुछ

देर बैठ कर मंत्र जाप करना चाहिये। फिर मन्त्र जाप करते–करते ही शवासन में लेट जाना चाहिये। शवासन को श्री प्रभु जी अमृतासन भी कहते थे। शवासन में लेट कर अभ्यास करने के लिए श्री प्रभु जी स्त्रियों को भी कहा करते थे। वैसे तो आमतौर पर रात्रि में बाँये करवट सोना चाहिए। क्योंकि, रात्रि में वात कफ की अधिकता रहती है इसलिए दाँये स्वर–पिंगला को चलाना चाहिये। किन्तु साधना की दृष्टि से शवासन में ही लेट कर अभ्यास करना चाहिए। शवासन में सुषुम्ना चलती है। जब सुषुम्ना चलने लगे–अर्थात् जब दोनों नासिका से श्वास बराबर चल रहा हो तो कुण्डलिनी में प्रबोध होता है, मन की एकाग्रता बनती है। इस प्रकार शवासन से लेटने पर वृत्ति एकाग्र रहेगी, अच्छे अनुभव होंगे, भजन चलता रहेगा। ऐसी स्थिति के लिए ही कहा गया है–

'सोना तो सबसे भला जो कोई जाने सोया
अन्तर लौ लागी रहे सहज ही सुमिरन होया।'

ध्यानाभ्यास से जो अपने पापों का क्षय कर देता है अथवा गुरु देव की अनुकम्पा को प्राप्त कर लेता है, वह व्यक्ति प्राक्तन् घोर कर्म विपाक को शरीर रहते–रहते भोग करके अन्तिम काल में शुद्ध हो जाता है उसके प्राण निकलने में कोई कष्ट नहीं होता। मैं अपने ऐसे बहुत से ध्यानी बच्चों का उदाहरण देता ही रहता हूँ। ध्यान के प्रभाव से, तप के प्रभाव से, स्वाध्याय के प्रभाव से उनको अन्तिम समय में कोई कष्ट नहीं हुआ और वे सद्गति भाजन बन गये। **'अस्तु–वैराग्यम् समुपाश्रितः'** साधक को चाहिये कि वे अपने मन में वैराग्य को धारण करे। संसार की अनित्यता का बार–बार विचार करना चाहिये और किसी वस्तु से, व्यक्ति से राग नहीं करना चाहिये। श्री प्रभु जी कहा करते थे–जो तुम्हारा मन ले ले, वही तुम्हारा बैरी है। वह तुम्हारे मन की शक्ति को खींचता रहेगा और जैसा वह है वैसे ही तुम्हें बना देगा। इसलिये साधक को सावधान रहना चाहिये। किसी में आसक्ति नहीं बढ़ानी चाहिये।

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्: साधक अहंकार को छोड़ दे। मनुष्य में कई प्रकार का अहंकार होता है जैसे कर्म करने का अहंकार, बल का अहंकार, धन का अहंकार, विद्या का अहंकार आदि–आदि सब अनिष्ट अहंकार के कारण होता है। इसलिये बल–किसी भी प्रकार का बल हो, उसका दुरुपयोग न करें। **दर्प**–मिथ्याभिमान न करे। **कामम्**–अनेक प्रकार की कामनायें तृष्णायें होती हैं, उनका त्याग करे। **क्रोधम्**–किसी पर क्रोध न करें। क्रोध करने से आन्तरिक शक्ति भी क्षीण होती है और शारीरिक शक्ति भी क्षीण होती है। **परिग्रहम्**–आवश्यकता से अधिक वस्तु का संग्रह न करे। साधक जीवनोपयोगी कम से कम वस्तु अपने पास रखे। इसलिये परिग्रह न करे। **निर्मम**:–अर्थात् ममता रहित बने। किसी वस्तु

या व्यक्ति में आसक्ति न रखे। यदि साधक भगवान के उपर्युक्त आदेश को मानकर चलता है तो वह परम शांति को पा जाता है और ब्रह्मत्व को पा जाता है अर्थात् ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

भगवान पतंजलि देव ने चित्त को प्रसन्न रखने का उपाय योग दर्शन में बताया है। यदि ये चार बातें साधक अपने अन्दर कायम कर लें, तो उनकी समाधि में विघ्न नहीं पड़ता चित्त प्रफुल्लित रहता है। वे चार साधना हैं–

'मैत्री करुणा मुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्'

इसका अर्थ यह है कि साधक सुखी व्यक्ति से मैत्री की भावना, सुहृदयता का व्यवहार रखे। दुःखी प्राणियों के प्रति करुणा का भाव रखे। दया दुखियों पर करें जो पुण्यात्मा हैं साधु हैं, उन को देखकर मन में आनन्द का अनुभव करें और जो दुराचारी या पापी व्यक्ति हैं, उनके प्रति उदासीन भाव रखें। इस प्रकार के भाव लाने से योगी के मन में कोई विक्षेप नहीं आता है, उसका चित्त प्रसन्न रहता है। मैं कभी–कभी तुम्हें इस बात का संकेत कर दिया करता हूँ कि तुम्हें अपनी दिनचर्या किस प्रकार की रखनी चाहिए। देखो! साधक को 'युक्ताहार विचार' का सिद्धान्त हमेशा अपने सामने रखना चाहिए। रात्रि को मन्त्र जाप करते–करते दस बजे तक सो जाना चाहिए। सुबह ठीक चार बजे उठ जाना चाहिए। उठने के बाद शौच जाना चाहिए। यदि कोष्टबद्धता रहती है, तो नियमित गर्म पानी में नींबू व नमक डाल कर पीना चाहिए। शौच से निवृत्त होकर दातूनादि से दाँत व जीभ ठीक प्रकार से साफ करनी चाहिये। नहाने के लिए ठण्डे पानी का प्रयोग उत्तम रहता है। इससे रोमकूप खुल जाते हैं तत्पश्चात् खद्दर के खुरदुरे अंगोछे से शरीर को रगड़–रगड़ कर पौंछना चाहिए। इसके बाद थोड़ा जीवन तत्व साधन अवश्य करना चाहिये। पाँच बजे तक इन कार्यों से निवृत्त होकर आनन्द कन्द श्री प्रभु जी की आरती करें। उसके पश्चात् मंत्र जाप व ध्यान के लिए बैठ जायें। मंत्र को श्वास–प्रश्वास से जपना चाहिये। यदि इसमें नींद आने लगे तो जीभ से बोल–बोल कर भी जप कर सकते हो। मेरुदण्ड को सीधा रखो ब्रह्मचर्य पूर्वक छः महीने तक शरीर सीधा रख कर अभ्यास करोगे तो ध्यान लगेगा ही लगेगा। पहले हमारा नियम था जो छः महीने तक तीन घण्टे बैठ लेता था, उसे ही दीक्षा देते थे और छः महीने तक जो छः छः घण्टे बैठता था, तब शक्तिपात करते थे। अब भीड़भाड़ के कारण यह नियम चल नहीं पाता है। जीवन तत्व एवं योगासन करने से धातु सारे शरीर में व्याप्त हो जाता है। जिसमें साधक ओज तेज से भर जाता है। इसलिए नियमित योगासन अथवा जीवन तत्व आवश्यक है। साधना के विषय में पतंजलि देव का सूत्र याद रखना चाहिए–

'स तु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़ भूमिः।'

अर्थात् साधना को लम्बे समय तक करते रहना चाहिए। साल छः महीने में ही उकताना नहीं चाहिए। **नैरन्तर्य**–निरन्तर लगातार अर्थात् प्रतिदिन करें। **'सत्कारासेवितो'** सत्कार पूर्वक, आदरपूर्वक करे। यही साधन तुम्हें दुःखों से छुड़ा देगा, यही मोक्ष प्रदान करेगा, ऐसी भावना रखते हुए साधना करनी चाहिए तब साधना दृढ़ बनती है। एक और भी बात है, वह है–**तीव्र संवेगानामासन्नः** जो गाढ़ी लगन के साथ साधना करते हैं वह अपने लक्ष्य को जल्दी पाते हैं और जो साधना में शिथिलता बरतते हैं, उन्हें देर में सफलता मिलती है। स्वल्पाहार करोगे, तप करोगे अर्थात् सर्दी–गर्मी, भूख प्यास सहन करते हुये साधना करोगे, तो श्री प्रभु जी की कृपा से ध्यान लगने लगेगा। मैंने तुम्हें बताया था कि ध्यानियों के प्रारब्ध बदल जाया करते हैं। यदि गुरुदेव की कृपा से ध्यान लगता है तो ध्यानियों का भी रजिस्ट्रेशन हो जाता है। अर्थात् मनुष्य जन्म मिलेगा अथवा स्वर्गादि लोकों में जायेगा। निम्न योनियों में नहीं जा सकता। साधकों को एक डायरी रखनी चाहिए। प्रातः संकल्प करो। आज दिन भर में मैं किसी को दुःख नहीं दूँगा। अपनी चेष्टाओं और मन पर नियन्त्रण रखूँगा आदि। फिर शाम को सोने से पहले अपनी पूरी दिनचर्या को देखो, आज कहीं गलत काम तो नहीं हो गया, साधना में कितना मन लगा इत्यादि बातों पर विचार कर अपने दुर्गुणों को दूर करने का प्रयास करो।

मेरे बच्चे अधिकांश घर–गृहस्थी वाले हैं। मैं तो अपने हर गृहस्थी बच्चे को एक बात जोर देकर कहा करता हूँ कि पति–पत्नी में परस्पर प्रेम रहना चाहिये। दोनों को एक प्राण होकर रहना चाहिये, इससे साधना में किसी प्रकार का विघ्न नहीं आता। मनु महाराज का वचन है–

संतुष्टो भार्यया भर्त्ता, भार्या भर्त्ता तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं सर्वम् तद् रोचते गृहम्।।

अर्थात् जिस परिवार में पत्नी से पति खुश रहता है और पति से पत्नी प्रसन्न रहती है, तो वहाँ सब प्रकार से सुख सम्पत्ति का वास रहता है, लक्ष्मी बरसती है और किसी प्रकार की बीमारी नहीं आती तथा उत्तम संतान की प्राप्ति होती है। किन्तु, घर में यदि रोज कलह रहता है, द्वन्द्व मचता है तो निश्चित जान लो कि दरिद्रता आयेगी, बीमारियाँ बढ़ेंगी और सन्तान भी अच्छी नहीं होगी। इसलिए हर गृहस्थी साधक को परस्पर प्रेम से रहना चाहिये।

योग साधकों को ध्यानाभ्यास के साथ–साथ यम नियमादि का भी पूरा–पूरा पालन करना चाहिये! उन्हें यह भी नहीं सोचना चाहिये कि पहले हम यम–नियम का ही पालन कर लेंगे, फिर ध्यानाभ्यास में बैठेंगे। यम नियमादि जो योग के पाँच बहिरंग साधन हैं, उनमें आँख बन्द करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनमें अपने व्यवहार में यम–नियमादि को अपनाना पड़ता है। मैंने

तुम्हें कई बार बताया है कि जो यम–नियमों का पालन नहीं करता और जिसने गुरुदेव के थपेड़े खाकर साधना नहीं की, उसका पतन हो जाया करता है। योग के एक अंग का ही यदि ठीक प्रकार से पालन हो जाये, तो वह एक अंग ही हमें समाधि द्वार तक पहुँचा देता है। यम नियमों में सर्वप्रथम स्थान अहिंसा का है। योगी को **'सर्वभूत हितेरताः'** की भावना से युक्त होकर मन, वचन एवं कर्म से किसी भी प्राणी को पीड़ा नहीं पहुँचानी चाहिए। वस्तुतः अहिंसा की पूरी–पूरी प्रतिष्ठा तो योगी को समाधि मिल जाने पर ही होती है। जब तक योगी **'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि'** की स्थिति में नहीं पहुँच जाता अथवा **'शुनि चैव श्वपाके च पण्डितः समदर्शिनः'** के सिद्धान्तानुसार सब प्राणियों में आत्मदर्शन नहीं कर लेता, तब तक कोई भी पूर्ण रूप से अहिंसक नहीं हो पाता।

अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाने पर, हिंसक प्राणियों में भी अहिंसा भाव का उदय हो जाता है। मुझे एक घटना याद आई है। एक बार आनन्दकन्द श्री प्रभुजी अपने कुछ शिष्यों के साथ ऋषिकेश से आगे ब्रह्मपुरी के जंगल में घूमने गये। श्री मुल्खराज जी महाराज भी उनके साथ थे, उन दिनों उनकी तुरीय स्थिति बनी हुई थी। घूमते–घूमते अचानक एक बाघ निकल आया। सब लोग डरने लगे। श्री प्रभु जी ने अभयदान दिया। सभी शांत खड़े रहे। ज्यों ही वह बाघ श्री मुल्खराज जी के समीप आया, वह पूँछ हिलाने लगा।

श्री मुल्खराज जी ने उसके सिर पर हाथ फेर कर प्यार किया। थोड़ी देर में वह अपने आप दूर चला गया। इसी का नाम है **'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः'**।

अहिंसा के बाद सत्य दूसरा यम है। इस व्रत का भी पालन करना बहुत आवश्यक है जो व्यक्ति पूर्णतया सत्यवादी हो जाता है, उसकी वाणी में ताकत आ जाती है। योगदर्शन में सत्य व्रत पालन करने का फल बताया है–**''सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्''** सत्य प्रतिष्ठा से योगी की वाणी क्रियाफलवती हो जाती है। **'अमोघाऽस्यवाक्भवति'** की स्थिति आ जाती है। वह अमोघ वाणी वाला बन जाता है और धीरे–धीरे वह ऋतम्भरा प्रज्ञा तक भी पहुँच जाता है। मैं तुम्हें अपने एक गुरु भाई का उदाहरण देता हूँ। (यह घटना गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की अपनी आप बीती घटना है। गुरुदेव जी ऐसे दृष्टांत समझाते हुए अपनी ही घटनायें बताते थे किन्तु अपना नाम नहीं आने देते थे) वह गुरु भाई अपने मुख से जो कह दिया करते थे, वह पूर्णतया सत्य होता था। सत्य बोलने का यह पवित्र व्रत उसे बाल्यकाल से ही, उनके पिता के द्वारा दृढ़ बना दिया गया था। एक बार वे योग प्रचार करते हुए रोहतक जिला में किसी गाँव में गये। वहाँ पर एक ब्राह्मण बालक को भूतोन्माद की बीमारी लगी हुई थी। उसका इलाज उन्होंने अपनी मानसिक शक्ति से किया और उसे आराम हो गया। इसके फलस्वरूप इस गाँव

में उनके सत्संग का काफी प्रचार हो गया। उस गाँव में वह महात्मा दस पन्द्रह दिन तक रहे। इसके बाद उनका कार्यक्रम किसी दूसरे स्थान में निश्चित हो चुका था।

निर्धारित दिन उन्हें दिन की गाड़ी पकड़नी थी। स्टेशन वहाँ से पाँच–छः किलोमीटर दूर था। महात्मा जी गाड़ी पकड़ने के लिए चलने वाले थे कि अचानक वर्षा शुरू हो गई ओले पड़ने लगे। सत्संगियों ने कहा–महाराज! ऐसे में जाना तो अत्यन्त कठिन है। आप आज का कार्यक्रम स्थगित कर दें। माघ का महीना था। महात्मा जी सत्यवादी थे। अतः अपने वचन की रक्षा के लिए ऐसी स्थिति में भी चलने को तैयार हो गये। सवारी भी कोई जा नहीं सकती थी। महात्मा जी ने अपने सत्संगियों से कहा कि तुम हमारा बिस्तर और शेष सामान बाद में पहुँचा देना। अपने वचन का पालन करने के लिए वर्षा में ही एक छाता लेकर वे चल पड़े। सभी गाँव वालों को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि महात्मा जी आधा फर्लांग भी नहीं गये थे कि वर्षा रुक गई। बादल हट गये आकाश स्वच्छ हो गया। सत्संगी भी उनके पीछे सामान लेकर चल पड़े। उनके सत्य संकल्प के कारण वे ठीक समय पर पहुँचे और गाड़ी पकड़ ली। वह महात्मा जी की सत्य संकल्पता का ही परिणाम था। सत्य वादन के एक साल के अनवरत अभ्यास करने से योगी को वाक्सिद्धि स्वतः प्राप्त हो जाती है। किन्तु इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि कटु सत्य भी न बोले। कटु सत्य में अनेक प्रकार की हानियाँ निहित रहा करती हैं। सत्यवादी व्यक्ति यदि साथ में ध्यान योगी भी है तो उसके लिये बुद्धि का आलोक खुल जाता है, उसे स्फुट प्रज्ञा प्राप्त हो जाती है। साधक के लिये ब्रह्मचर्य का व्रत का पालन तो आवश्यक है ही–

'ब्रह्मचारी विनयेषु शक्तिमाधातुम् समर्थो भवति।'

ब्रह्मचारी अपने शिष्यों पर शक्तिपात कर सकता है अणिमादि सिद्धियाँ ब्रह्मचारी को सहज ही मिल जाती हैं। इसलिये साधक को अपनी इन्द्रियों पर निग्रह रखना चाहिये, यह बहुत बड़ा तप है। साधक को अस्तेय व्रत का भी पालन करना चाहिये। 'अस्तेय' का अर्थ है मन से चोरी का भाव निकाल देना। इस भाव की प्रतिष्ठा हो जाने पर **'अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम'** अर्थात् योगी के सम्मुख सब रतन अपने आप उपस्थित हो जाया करते हैं। अपरिग्रह का पालन भी जरूरी है। अपनी धन सम्पत्ति में आसक्ति का न रखना अपरिग्रह कहलाता है। अपरिग्रह से संतोष मिलता है। इस व्रत के स्थैर्य से **'जन्मकथान्तसंबोधः'** आगे पीछे जन्म की बातें याद रहने वाली हैं।

जिला मैनपुरी में हमारा एक शिष्य रघुनन्दन लाल शास्त्री है। उनकी एक लड़की है। वह पिछले जन्म में रेल के नीचे कट कर मर गई थी। पिछले जन्म में मेहतर कुल में उसका जन्म हुआ था। उसके पति और घर वाले उसे बहुत मारते पीटते थे। इसलिए एक दिन उस लड़की

ने आत्म हत्या कर ली। इस लड़की को इस जन्म में भी पूर्व जन्म की सारी बातें याद हैं। लोक में भी ऐसी बातें कभी-कभी घट जाती हैं। किन्तु यह योग की बात नहीं है। इस प्रकार से ये पाँच यम हैं। इसमें से यदि एक की भी साधना हो गई तो साधक मुक्ति द्वार तक पहुँच सकता है। यमों के साथ-साथ नियमों का भी पालन करना चाहिये। पहला नियम शौच है। यह दो प्रकार का होता है एक बाहर का दूसरा भीतर का। शरीर वस्त्र आदि को स्वच्छ व शुद्ध रखना बाह्य शौच है। शुभ भावों से अन्तःकरण को पवित्र रखना भीतरी शुद्धि है। अन्तःकरण शुद्धि के बिना, पर दर्शन नहीं हो सकता। संतोष का भी अपना महत्व है। इसी प्रकार से तप और स्वाध्याय भी क्रिया योग के अन्तर्गत आते हैं-ये दोनों अन्तःकरण को पवित्र बनाने वाले उत्तम साधन हैं। **'तपसा चीयते ब्रह्म'** तप के द्वारा ही ब्रह्म दर्शन होता है। स्वाध्याय से इष्ट देव सिद्धि एवं ऋषियों के दर्शन संभव होते हैं। इस प्रकार से तप व स्वाध्याय को बढ़ाता हुआ साधक ईश्वर प्रणिधान की ओर निकल जाता है। सतोगुण के विकास होने पर ईश्वर प्रणिधान् अर्थात् आत्म समर्पण होता है।

साधक को अपना आचार विचार ठीक रखना चाहिये। **'आचारहीनं न पुनन्तिवेदाः'** अर्थात् आचार हीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते। आहार विहार योगी का युक्त होना चाहिए।

गीता में भगवान का आदेश है-

'युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

अधिक खाने अथवा बिल्कुल न खाने से योग सिद्ध नहीं होता। कर्मों के प्रति भी चेष्टा युक्त होना चाहिए। अनावश्यक चपलता ठीक नहीं होती। शरीर को चंचल रखने से मन का भी चंचल रहने का स्वभाव बढ़ जाता है। समय पर सोना, समय पर जागना उचित है। इस प्रकार से अपनी नियमानुवर्तिता का पालन करने से योग समस्त दुःखों का हरण करने वाला बन जाता है।

साधक को अपने आप को हर समय व्यस्त (निरत) रखना चाहिये। चलते फिरते उठते-बैठते गुरु मंत्र का जाप करते रहना चाहिये। जो ऐसा करेंगे, श्री प्रभु जी उनकी अवश्य सहायता करेंगे।

बार-बार आशीर्वाद।

सम्पादकीय–

सिद्धयोग–हमारी प्यारी पत्रिका

–योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

प्रिय पाठकगण/गुरु भाई–बहिन,

जय गुरुदेव की!

क्षण–क्षण स्मरणीय गुरुदेव योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के संकल्प से प्रकट कल्पवृक्ष के रूप में हमारी पत्रिका 'सिद्धयोग' अपनी आयु के 50 वर्ष पूरा करके अप्रैल विशेषांक के साथ ही 51वें वर्ष में प्रवेश कर जाएगी। श्री गुरुदेव भगवान ने इस पावन वृक्ष का आरोपण सन् 1968 में किया था, जिसका एकमात्र लक्ष्य था कि योग जिज्ञासु इसके माध्यम से योग तत्व व सिद्धान्त को समझ लें जिससे योग मार्ग पर चलकर आध्यात्मिक उन्नति के चरम लक्ष्य की ओर वे चल सकें। आज के इस विकासशील युग में भौतिक उन्नति के साथ–साथ धार्मिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जागरूकता आ गयी है। इसी क्रम में धार्मिक व आध्यात्मिक पत्र–पत्रिकाओं का भी समाज में व्यापक प्रचार कार्य चल रहा है। किन्तु 'सिद्धयोग' जिस प्रकार से योग के सैद्धांतिक दुरूह व दुर्बोध्य पक्ष को अत्यन्त सरल भाषा में बोधगम्य बना देती है ऐसा दूसरी पत्रिकाओं में देखने को नहीं मिलता।

'सिद्धयोग' गुरुदेव से सम्पर्क बनाये रखने का सक्षम माध्यम रही है। साधक घर बैठे ही गुरुदेव के उपदेश एवं आज्ञाओं का संकेत पा जाया करते हैं। पत्रिका के माध्यम से भी गुरुदेव की आत्मिक शक्ति का संचार शिष्यों में होता रहता है। साधकों के मन में उठने वाले संशयों का निवारण भी इससे हो जाता है।

वेदान्त प्रक्रिया में आत्म दर्शन की ओर चलने के साधन के रूप में तीन अंगों का वर्णन किया गया है। वेदान्त का सिद्धान्त है–**आत्मा वा अरेद्रष्टव्य:, श्रोतव्य: मन्तव्य: निदिध्यासितव्य:**। अर्थात् आत्मा का दर्शन करना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम श्री गुरुदेव के मुख से आत्म तत्व के विषय में श्रवण करना चाहिए। श्रवण करने के पश्चात् मनन करना चाहिए। ठीक प्रकार से मनन हो जाने पर निदिध्यासन में बैठना चाहिए। निदिध्यासन ही योग की भाषा में ध्यान–योग का अभ्यास कहलाता है। श्री गुरुदेव जब शिष्य को उपदेश करते हैं तो शब्द के माध्यम से शिष्य पर शक्ति संचार होता है। योग के ग्रन्थों में शक्तिपात

की अनेक प्रकार की दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। इनमें संकल्प दीक्षा, स्पर्श दीक्षा, दृग दीक्षा, हार्द दीक्षा आदि दीक्षाओं का वर्णन मिलता है। गुरुदेव दीक्षा दान के समय गुरुमन्त्र के माध्यम से शिष्य के दाहिने कर्ण में शक्ति का संचार करते हैं। आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान् ने 'सिद्धयोग' परम्परा को अक्षुण्ण रखा है। सिद्धयोग के पठन से कोई भी योग जिज्ञासु योग की परिभाषा, स्वरूप, विधि एवं लक्ष्य समझ सकता है। श्रद्धालु साधकों में सिद्धयोग के माध्यम से ही गुरुदेव के दर्शन एवं कृपालाभ होते देखा गया है। जीवन से परेशान कई व्यक्तियों को सन्मार्ग मिला और जीवन की धारा ही बदल गयी। पत्रिका के पठन–पाठन एवं अनुशीलन से उत्साह, उल्लास एवं मार्गदर्शन मिलता है। योग शास्त्र अत्यन्त गहन है, इसके दुरूह विषयों को समझना बहुत कठिन है, किन्तु सिद्धयोग ने इसे अत्यन्त सरल एवं सुबोध्य बनाया है। पत्रिका का अध्ययन साधक के अन्दर श्रद्धा का बीज बो देता है। जिसे योग साधना की नींव माना गया है। जिसमें सम्यक् श्रद्धा नही है, वह विनष्ट हो जाता है। भगवान के गीता में वचन हैं–**''संशयात्मा विनश्यति''** अर्थात् संशय युक्त व्यक्ति पथभ्रष्ट होकर पतन की ओर चला जाता है। इसलिए 'सिद्धयोग' श्रद्धा एवं स्वाध्याय का अचूक साधन है। साधक को स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुदेव अपने शिष्यों को उपदेश करते हुए कहते हैं कि–**''स्वाध्यायाद् मा प्रमदितव्यम्''** अर्थात् स्वाध्याय में कदापि प्रमाद नहीं करना चाहिए। गुरुमन्त्र का जाप भी उत्तम श्रेणी का स्वाध्याय है, इसमें प्रमाद या लापरवाही नहीं करनी चाहिए। अस्तु।

पत्रिका के लिए, गुरुदेव के समय से ही, किसी प्रकार की विज्ञापन आदि सामग्री प्रकाशनार्थ स्वीकार कर वित्तीय आय जुटाने अथवा सहायता प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं रहा है, वह आज भी यथावत् है। 25–30 हजार रुपये का वार्षिक घाटा सहन करके भी पत्रिका अबाध गति से प्रकाशित हो रही है, यह सब पूज्य गुरुदेवजी की कृपा का ही फल है। उदारमना गुरुभाई–बहिनों के आर्थिक सहयोग से घाटे की पूर्ति हो जाती है।

अन्त में, मैं उन सभी मनीषी विद्वान लेखकों एवं रचनाकार कवियों के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, जिनके उत्कृष्ट योगपरक लेख एवं सारगर्भित रचनाओं से पत्रिका की महत्ता व शोभा बनी हुई है। मैं उनसे इसी प्रकार अपनी रचनायें, लेखादि निरन्तर भेजते रहकर स्नेह भाव बनाये रखने का नम्र अनुरोध करता हूँ। पत्रिका के पाठकों व ग्राहकों से भी निवेदन करूँगा कि वे नियमित ग्राहक बने रहें तथा कम से कम 5 नये सदस्य अवश्य जोड़ें। इस दिशा में गंगापुर मंडल, कानपुर मंडल व सहारनपुर मंडल के साधकों का प्रयास वस्तुतः स्तुत्य है। इस अंक के साथ ही वार्षिक ग्राहकों का

शुल्क समाप्त हो रहा है, अतः समय पर आगामी वर्ष के लिए शुल्क भेज दें। वार्षिक शुल्क रु. 180/– हो गया है तथा आजीवन शुल्क रु. 1000/– हो गया है।

आप सभी के लिए आने वाला वर्ष मंगलमय हो।

आनन्दकन्द श्री प्रभुजी का परम पावन प्राकट्य दिवस श्री रामनवमी योग महोत्सव के रूप में सवाँई आश्रम, आगरा में बड़े हर्षोल्लास व धूमधाम से मनाया जायेगा, सभी श्रद्धालु भक्त उसमें सम्मिलित होकर श्री प्रभुजी की कृपा कोर को पाकर जीवन को धन्य बना लें। इस अवसर पर श्री प्रभुजी के चरणों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

श्री रामनवमी योग महोत्सव दिनांक 23, 24 व 25 मार्च, 2018 को मनाया जाना निश्चित हो चुका है।

सभी गुरु भक्तों को चाहिये कि श्री रामनवमी के पवित्र उत्सव पर धाम पर पहुँचें तथा गुरुदेव की कृपा को प्राप्त करें। जो यह मानते हैं कि गुरुदेव तो हैं नहीं वहाँ जाकर क्या करेंगे यह उनकी महान भूल है। गुरुदेव की शक्ति तो अनवरत बरसती रहती है। गुरुदेव कहा करते थे कि श्री सिद्धगुफा से ही सारी दुनिया को योग का प्रकाश मिल रहा ह। अतः सभी आश्रम की शाखाओं के संचालकों को चाहिये स्वयं भी आवें और अन्य गुरु भक्तों को भी पवित्र धाम के दर्शन करावें ताकि योग ध्यान में उत्तरोत्तर उन्नति पा सकें। जीवन में यदि आत्म दर्शन पा लिया तो अत्युत्तम बात है अन्यथा 'महती विनष्टि' महान संपात की बात है–बहुत बड़ी हानि की बात है। अतः आत्मदर्शन का लक्ष्य सामने रखते हुए **'कार्यम् वा साधेयम् देहं वा पातेयम्'** अर्थात् या तो आत्मसिद्धि रूप महान कार्य को सिद्ध करूँगा या मेरा देह पात हो जाए तब भी कोई चिन्ता न मानते हुए सतत् आत्म लाभ की ओर अग्रसर रहना चाहिये। भौतिक भोगवाद प्रपञ्च है अपने साथ धोखा है। अतः सत्य की प्राप्ति के लिए प्राणपण से लग जायें।

जय गुरुदेव जी की।

आपका

डॉ. दासलाल योगाचार्य

संपादक–सिद्धयोग

।। ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

स्कन्ध नौ के बाइसवें अध्याय में पांचाल, कौरव और मगध देशीय राजाओं के वंश का विवरण दिया गया है। संक्षेप में कथा के मर्म को समझने के लिए कुछ वंश परम्पराओं को जानना होगा। राजा प्रतीप के तीन पुत्र थे—देवापि, शन्तनु और वाह्लीक। देवापि इस समय भी योगसाधना कर रहे हैं और योगियों के प्रसिद्ध निवास स्थान कलाप ग्राम में रहते हैं—"**देवापिर्योगमास्थाय कलाप ग्राममाश्रितः**"। इनके छोटे भाई शन्तनु पूर्वजन्म में महाभिष थे। इस जन्म में भी वे अपने हाथ से जिसे छू देते थे, वह बूढ़े से जवान हो जाता था। ये ही देवापि की जगह राजा हुये।

जब कलियुग में चन्द्रवंश का नाश हो जायेगा, तब सत्य युग के प्रारम्भ में देवापि फिर उसकी स्थापना करेंगे। शन्तनु के द्वारा गंगाजी के गर्भ से नैष्ठिक ब्रह्मचारी भीष्म का जन्म हुआ। वे भगवान के परम प्रेमी भक्त और परम ज्ञानी थे।

बाइसवें, तेइसवें और चौबीसवें अध्याय में भगवान शुकदेव जी ने, करु, पाण्डव, यदुवंश तथा महाभारत में आने वाले पात्रों का पूर्वापरक वर्णन परीक्षित से किया है। शन्तनु के द्वारा दासराज की कन्या से चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य पैदा हुये। दासराज की कन्या सत्यवती से ही पराशर जी द्वारा मेरे पिता भगवान कृष्ण द्वैपायन व्यास जी अवतीर्ण हुये। जिनके कृपा प्रसाद से यह श्रीमद्भागवत्-पुराण ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ। विचित्रवीर्य ने काशीराज की कन्या अम्बिका और अम्बालिका से विवाह किया। परन्तु यक्ष्मा रोग से उसकी मृत्यु हो गयी। चित्रांगद पहले ही गन्धर्वों द्वारा मारा जा चुका था। अतः माता सत्यवती के कहने से भगवान् व्यासजी ने सन्तान हीन भाई की स्त्रियों से धृतराष्ट्र एवं पाण्डु दो पुत्र उत्पन्न किये। उनकी दासी से तीसरे पुत्र विदुर जी हुये।

धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी के सौ पुत्र हुये। बड़ा पुत्र दुर्योधन तथा एक कन्या दुःशला थी। शापवश पाण्डु स्त्री-सहवास नहीं कर सकते थे। अतः उनकी पत्नी कुन्ती से धर्म, वायु और इन्द्र द्वारा युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुये। पाण्डु की दूसरी पत्नी माद्री को अश्वनी कुमारों द्वारा नकुल एवं सहदेव का जन्म हुआ।

अर्जुन की सुभद्रा नाम की पत्नी से तुम्हारे पिता अभिमन्यु का जन्म हुआ। अभिमन्यु के द्वारा उत्तरा के गर्भ से तुम्हारा जन्म हुआ। परीक्षित ! उस समय कुरुवंश का नाश हो चुका था। अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से तुम भी जल ही चुके थे, परन्तु भगवान श्रीकृष्ण ने अपने प्रभाव से तुम्हें उस मृत्यु से जीता-जागता बचा लिया।

राजा ययाति के बड़े लड़के यदु थे। इस वंश परम्परा में कृतवीर्य हुये जिनका पुत्र अर्जुन सातों द्वीपों का एक क्षत्र सम्राट था। उसने भगवान श्री दत्तात्रेय जी से योग विद्या और अणिमा-लघिमा आदि बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं।

अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तदीपेश्वरोऽभवत्।
दत्तात्रेयाद्धरेरंशात् प्राप्तयोगमहागुणः।।24।।

श्री शुकदेव जी कहते हैं-परीक्षित ! मधु, वृष्णि और यदु के कारण यह वंश परम्परा, माधव, वार्ष्णेय तथा यादव के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस परम्परा में राजा चित्ररथ हुये हैं, उनका पुत्र शशबिन्दु परम योगी, महान भोगैश्वर्य, सम्पन्न और अत्यन्त पराक्रमी था।

श्वांहिस्ततो रुशेकुर्वै तस्य चित्ररथस्ततः।
शशबिन्दुर्महायोगी महाभोजो महानभूत्।।3।।

(अ. 23 स्क. 9)

चौबीसवें अध्याय में विदर्भ के वंश का वर्णन है। चेदि के वंश में ही दमघोष एवं शिशुपाल हुये हैं। देवावृध के पुत्र का नाम बभ्रु था। बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ है और देवावृध देवताओं के समान है। इसका कारण यह है कि बभ्रु एवं देवावृध से उपदेश लेकर चौदह हजार पैंसठ मनुष्य परमपद को प्राप्त हो चुके हैं। इस परम्परा में महाभोज भी बड़ा धर्मात्मा था। उसी के वंश में भोजवंशी यादव हुये-

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः।
पुरुषाः पंचषष्टिश्च षट् सहस्त्राणि चाष्ट च।।10।।
येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि।
महाभोजोऽपि धर्मात्मा भोजा आसंस्तदन्वये।।11।।

आगे चित्ररथ के वंश में वसुदेव जी का जन्म हुआ। इनके जन्म के समय देवताओं के नगारे और वाद्य स्वयं ही बजने लगे। वे ही भगवान कृष्ण के पिता हुये।

वसुदेव जी की बहन पृथा (कुन्ती) थीं। राजा सूरसेन ने अपनी कन्या कुन्ति भोज को दे दी थी क्योंकि वे निःसंतान थे।

पृथा ने दुर्वासा ऋषि को प्रसन्न करके उनसे देवताओं को बुलाने की विद्या सीख

ली। एक दिन उस विद्या के प्रभाव की परीक्षा लेने के लिये पृथा ने भगवान सूर्य का आवाहन किया। तत्क्षण सूर्यदेव कुन्ती के समक्ष प्रकट हो गये। कुन्ती विस्मय से भर गयी। उसने कहा–भगवान! मुझे क्षमा करें मैंने विद्या का प्रयोग परीक्षा करने हेतु किया था। अब आप पधार सकते हैं। सूर्यदेव ने कहा–हे सुन्दरी! मेरा दर्शन निष्फल नहीं हो सकता। अब मैं तुझसे एक पुत्र उत्पन्न करना चाहता हूँ। हाँ, अवश्य ही तुम्हारी योनि दूषित न हो, इसका उपाय मैं कर दूँगा।

गर्भ स्थापन के बाद वे स्वर्ग चले गये। उसी समय कुन्ती से एक सुन्दर एवं तेजस्वी शिशु उत्पन्न हुआ। पृथा लोक निन्दा से डर गयी। उसने बड़े दुःख से उस बालक को नदी के जल में छोड़ दिया।

परीक्षित! इन्हीं पृथा का ब्याह तुम्हारे परदादा पाण्डु से हुआ था। परम उदार वासुदेव जी ने देवकी के गर्भ से आठ पुत्र उत्पन्न किये, जिनमें सात के नाम हैं–कीर्तिमान, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, संमर्दन, भद्र और शेषावतार श्री बलराम जी। आठवें पुत्र स्वयं श्री भगवान ही थे। परीक्षित! तुम्हारी दादी सुभद्रा भी देवकी जी की ही कन्या थीं।

जब-जब संसार में धर्म का ह्रास और पाप की वृद्धि होती है, तब-तब सर्वशक्तिमान श्री हरि अवतार ग्रहण करते हैं। परीक्षित! भगवान सबके द्रष्टा और वास्तव में असंग आत्मा ही हैं। इसलिये उनकी आत्मस्वरूपिणी योगमाया के अतिरिक्त उनके जन्म अथवा कर्म का और कोई भी कारण नहीं है–

यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः।
तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः।।56।।
न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते।
आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः।।57।।

(अ. 24 स्क. 9)

भगवान के अनुग्रह से ही जीव माया से अलग अपने आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो पाता है। भगवान ने पृथ्वी के भार रूप असुरों को मार कर भार उतारा ही, साथ ही कलियुग में पैदा होने वाले भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये अपने परम पवित्र यश का विस्तार किया जिसका गान और श्रवण करने से ही उनके दुःख, शोक और अज्ञान सबके-सब नष्ट हो जायेंगे। उनका सर्वाङ्गसुन्दर श्यामल शरीर है। वे अपनी प्रेमयुक्त मुस्कान, मधुर चितवन, प्रसादपूर्ण वचन और पराक्रमपूर्ण लीला के द्वारा सारे मनुष्य लोक को आनन्द से सराबोर कर दिया। लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुये मथुरा में, परन्तु वे वहाँ रहे

नहीं, वहाँ से गोकुल नन्दबाबा के घर चले गये। वहाँ उन्हें ग्वाल, गोपी और गौओं को जो सुखी करना था। ब्रज, मथुरा, द्वारिका में रह कर अनेकों शत्रुओं का संहार किया। कौरव और पाण्डवों के बीच हुये कलह से पृथ्वी का बहुत भार हलका कर दिया। अन्त में उद्धव को आत्म तत्त्व का उपदेश किया और अपने परम धाम को सिधार गये।

यहाँ नवम् स्कन्ध का चौबीसवाँ अध्याय विश्राम पाता है। आगे दशम् स्कन्ध पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध में परम योगयोगेश्वर अखिल आत्मा युगचक्र, कालचक्र, जगचक्र को गति देने वाले परमात्मा, पुरुषविशेष, श्रीकृष्ण की योगमय लीला, रहस्यों से युक्त वर्णन किया गया है।

अब मैं भी देवकी का पुत्र बनूँगा और तुम नन्दबाबा की पत्नि यशोदा के गर्भ से जन्म लेना। जब भगवान ने इस प्रकार आदेश दिया तब योग माया ने ''जो आज्ञा'' कहकर पृथ्वीलोक चली आयीं भगवान के आदेशों का पालन किया। देवकी का सातवाँ गर्भ नष्ट हो गया ऐसा सोचकर पुरवासी बड़े दुःखी हुये।

देवकी के गर्भ में जब स्वयं भगवान विराजमान हुये उस समय देवकी की शोभा कांति से बंदीगृह जगमगा उठा। कंस ने यह सब लक्षण देखकर मन में विचारने लगा 'अबकी बार मेरा काल विष्णु ने गर्भ में अवश्य प्रवेश किया है। यद्यपि कंस देवकी को मार सकता था, किन्तु प्रभु प्रेरणा से वह इस अत्यन्त क्रूरता के विचार से निवृत्त हो गया। अब भगवान के प्रति दृढ़ वैर भाव से उनके जन्म की प्रतीक्षा करने लगा। वह उठते–बैठते, खाते–पीते, सोते–जागते और चलते–फिरते सदा ही श्री कृष्ण के चिंतन में लगा रहता। जहाँ उसकी आँख पड़ती, वहाँ उसे श्रीकृष्ण दीख जाते। इस प्रकार चिंतन से उसे सारा जगत् ही श्रीकृष्ण मय दीखने लगा–

आसीनः संविशंस्तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन महीम्।
चिन्तयानो हृषकेशमपश्यत् तन्मयं जगत।।24।।

(अ. 2 स्क. 10 पूर्वा.)

।। ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

प्रभू जी ने लगाई फटकार

जगदीश राय बंसल ''अधम्''– 9212434003

अखिल ब्रह्माण्ड नायक जगत नियन्ता अखण्ड ज्योति प्रभु श्री राम लाल जी महाराज एवं प्रातः स्मरणीय अनन्त विभूषित योग योगेश्वर गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने प्रत्येक संस्कारी बच्चे पर हर समय हर स्थान पर जाने अनजाने अथवा आर्त पुकार पर अपनी कृपा के बादल सदैव बरसाते रहते हैं। ये कृपायें चाहे किसी दुर्घटना से प्राण रक्षा की हों अथवा पानी में डूबने से बचाने की हों अथवा सरपट दौड़ती रेलगाड़ी के पहिये से बचाने की हों अथवा किसी अनिष्टकारी तान्त्रिक प्रकोप से बचाने की हों। जन कल्याण एवं अपने लाड़ले बच्चों के निमित्त किसी को सिद्ध गुफा रज देकर, किसी को पुष्प प्रसाद देकर अथवा किसी को स्पृष्य अथवा दृष्य मात्र से निहाल करते रहे हैं। इतना ही नहीं अपितु अपनी योग विभूतियों से सिद्ध, रिद्धि–सिद्धि के स्वामी तरह–तरह की वेशभूषा बना कर मौके पर पहुँचते रहे हैं। कहीं न्यायाधीश बन कर, कहीं सर्जन बनकर, कहीं बाबा अथवा फकीर बनकर, कहीं दरोगा बनकर और कहीं–कहीं निज रूप में प्रकट होकर हर प्रकार की आपदाओं से निवारण करते रहे हैं।

इसी प्रकार का एक कृपा प्रसंग गुरूदेव के लाड़ले हमारे आदरणीय गुरुभाई योग प्रचारक कांगड़ा आश्रम निवासी श्री विजय पुरी जी एवं श्रीमति शोभा पुरी जी की लाड़ली सुपुत्री अर्चनापुरी ने बतलाया कि मैं दिनांक 22 जुलाई 2003 को अपने निवास स्थान कांगड़ा आश्रम में सो रही थी। मेरे दो भ्राता श्री उसी कक्ष में सो रहे थे। मैं उन दिनों आठवीं कक्षा की छात्रा थी। यकायक मेरा कोई कलिष्ट संस्कार आन पड़ा। लगभग अर्धरात्रि के सन्नाटे में मुझे पायलयुक्त पद चाप की छम–छम सुनाई दी। यही ध्वनि मुझे दो दिवस पूर्व भी सुनाई दी थी। तब दिन में मैंने अपनी माता श्री से जिज्ञासा की थी कि मम्मी आप रात्रि बेला में पायल पहन कर घूम रहीं थीं? प्रत्युत्तर में माता जी ने बतलाया था कि नहीं पुत्री मैं तो पायल पहनती ही नहीं। जब 22 जुलाई को वही ध्वनि सुनाई दी तो साथ–साथ रात्रि की खामोशी को भंग करती हुई एक विचित्र सी आवाज भी कानों में पड़ रही थी कि बाहर आ ...... बाहर आ ...... जो स्वरूप तूने गले में पहन रखा है उसे

भी बाहर फैंक दे। फैंक दे, बाहर आ ..... मैं एकदम चौंक गई। जब बाहर जाकर देखा तो एक काली कलूटी–बिखरे बाल–लम्बी चौड़ी औरत दहलीज पर खड़ी है। वह मुझे बार–बार बाहर बुला रही है। मैं भयभीत हो गई। मैंने झट से भाईयों को और साथ वाले कमरे से पापा मम्मी को उठाने का प्रयास किया, लेकिन गहरी निद्रा से कोई नहीं उठा। उधर वह औरत बड़ी कर्कश–उत्तेजित और आक्रोश भाषा में मुझे बार–बार बाहर बुलाए जा रही थी। मैंने गले में पहना प्रभुजी, गुरूजी का लोकिट कस कर हाथ में पकड़ लिया और गुरूमन्त्र का जाप करने लगी। चूंकि भावना का संसार पृथ्वी से भी भारी होता है। पापा जी हमेशा कहते हैं कि–जहाँ इष्ट होता है, वहाँ अनिष्ट नहीं होता। मम्मी कहा करती हैं कि–

संकट को देख दयालु, नंगे पैरों आते हैं।
निज बच्चों की रक्षा हेतु, अरसा नहीं लगाते हैं।

यही कथानक बातें आज मेरे लिए प्रत्यक्ष सिद्ध हुईं। हुआ यह कि अचानक मैंने एक अद्‌भुत लीला देखी कि भव भय हारी, आशुतोष, सर्व समर्थ्य, क्षण–क्षण पल–पल के रक्षक, सिद्धों के सम्राट प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सयन का पर्दा हटाकर अपने दरबार से स्थूल रूप में बाहर निकले। मैंने उनको प्रणाम कर शीघ्रता से बाहर जाने तक की व्यवस्था बनाई। दादा जी ने आशीर्वादात्मक वरद् हस्त से मुझे लगभग निर्भय कर दिया। उन्होंने पापा के कमरे से एक छड़ी उठाई और बाहर की तरफ गये। द्वार पर पहुँच प्रभु जी ने छड़ी को दो बार जमीन पर पट–पट पटका। फिर ओजस्वी वाणी से फटकार लगाई कि क्या है? क्यों आई हो? तुम अपने मोक्ष के लिए मेरे बच्चों को क्यों परेशान करती हो ....? जाओ .... फिर कभी इधर मुड़कर नहीं देखना ....। श्री प्रभुजी का **आभास*** होते ही उस औरत ने बाहर आ ...... लोकट फैंक दे ...... इत्यादि बड़बड़ाना तो बन्द कर दिया था और फटकार सुनकर तो चम्पत हो गई। फिर कभी नहीं आई।

अन्तर्यामी प्रभूजी वापिस लौट कर अपने यथा स्थान पर विराजमान हो गये। मैं मन ही मन में गुरुदेव शरणं–गुरुदेव नमामी..... करती–करती सो गई। प्रातःकाल सूर्य नारायण की सिन्दूरी आभा के साथ–साथ मैं उठी और मम्मी–पापा से लिपट कर भावुक हो गई। रात्रि के सन्नाटे को चीरती उस काली कलूटी की करतूत और प्राणरक्षक, अमंगलहारी श्री प्रभु जी महाराज का निज स्वरूप में प्रकट हो कर विलक्षण कृपा लीला वृतान्त साझा की। आश्चर्य–महान आश्चर्य के साथ परिवार ने मेरे साहस और कृपालु योगयोगेश्वर अनन्त श्री प्रभु जी की अनुकम्पा पर गर्व करते हुए गुरु दरबार में पेश हो कर दण्डवत्

प्रणाम–आभार–रहमत .... व्यक्त किया। फिर पापा जी ने मुझे पुनः गले लगाया, बोले, बेटी आज हमारे पापों की गठरी श्री प्रभु जी के चरण रूपी गंगा में बह गई है। मैं उस कबूतर और कबूतरी की कथा को कभी नहीं भूल पाऊँगा, जो आदरणीय महात्मा ज्ञानी बाबा जी गाया करते थे कि–

ऐ जी, जगत में जिसका–जगत पिता रखवारा
उसे मारने वाला हमने, कोई नहीं निहारा
जगत में ....

★ आभास यों हो जाता है कि इस प्रकार की दिव्य आत्माओं के प्रकट होने पर उनसे एक विशेष दिव्य सुगन्ध निकलती है, जो न तो किसी फूल फुलवाड़ी की होती है, न फलों या फलों के बाग की होती है, न अगरबत्ती अथवा हवन कुण्ड की होती है, न गौ घृत के बुझते दीपक की होती है, न इत्र–सैंट अथवा चन्दन इत्यादि की होती है। असुरी जाति इस सुगन्ध को दुर्गन्ध ही मानती है।

सब–कुछ नपा–तुला हो !

चित्त की एकाग्रता में सहायक दूसरी बात है–जीवन की परिमितता। हमारा सब काम नपा–तुला होना चाहिए। गणित–शास्त्र का यह रहस्य हमारी सब क्रियाओं में आ जाना चाहिए। औषधि जैसे नाप–तौलकर ली जाती है, वैसे ही आहार–निद्रा भी नपी–तुली होनी चाहिए। सब जगह नाप–तौल चाहिए। प्रत्येक इन्द्रिय पर पहरा बैठाना चाहिए। मैं ज्यादा तो नहीं खाता, अधिक तो नहीं सोता, जरूरत से ज्यादा तो नहीं देखता–इस प्रकार सतत् बारीकी से जाँच करते रहना चाहिए। ऐसा अभ्यास होने पर सफलता निश्चित मिल जाती है।

–आचार्य विनोबा

अपनी असली पहचान

स्व. आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

(आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा 'सिद्धयोग' के सुपरिचित लेखकों में से हैं। 'अपनी असली पहचान' शीर्षक से आपका विद्वतापूर्ण दार्शनिक लेख सराहनीय होने के साथ–साथ माननीय और आचरणीय भी है। आशा है 'सिद्धयोग' के पाठक इसके सार–तत्व को ग्रहण करके इससे लाभान्वित होंगे ऐसा हमारा विश्वास है। –सम्पादक)

हमारी अपनी पहचान या तो नाम से है या बाह्य सम्बन्धों से है। हमारा अमुक–अमुक नाम है, पिता का अमुक नाम है। डॉक्टर, इन्जीनियर, अध्यापक, कृषक, व्यापारी आदि–आदि व्यवसाय से सम्बन्धित हैं। इतनी आयु के हैं, अमुक स्थान के हैं। क्या कभी हमने यह भी सोचा है कि जब हम गहरी नींद में सो जाते हैं तो वहाँ नाम रूप और कर्मों के बनाये हुए सम्बन्ध नहीं रहते, पर वहाँ हम रहते हैं। क्योंकि सोकर उठने के बाद हम संसार के कार्यों का सम्पादन करने लगते हैं। यह प्रत्येक व्यक्ति के साथ घटित होता रहता है। फिर भी हम अपनी असली पहचान करने को उत्सुक नहीं होते। हम नित्यप्रति अपने कर्मों और संबंधों के माया–जाल में खो जाया करते हैं। जो कुछ भी हमारी पहचान होती है, वह बाहरी बातों से होती है। कई बार हम दूसरों के द्वारा अपनी पहचान बनाने में लगे रहते हैं। यदि दूसरे लोग हमें अच्छा कहने लगें या अपना काम निकालने के लिए हमें अनेक प्रत्येक के विभूषण और विश्लेषण दे दें तो हम अपने को वैसा ही समझकर अपना व्यवहार दिखाने लगते हैं। कोई बुरा कह दे तो हम अपने को पापात्मा समझने लगते हैं। हम वास्तव में हैं क्या? कौन बताये? माँ ने पिता का ज्ञान करा दिया, किन्तु यह भी देह सम्बन्ध का ही अधूरा ज्ञान हुआ। लोक–व्यवहार और धन–सम्पत्ति के स्वामित्व के काम के लिए यह परिज्ञान ठीक हो सकता है, किन्तु हमारे वास्तविक बोध का यह कारण नहीं बन सकता। हमारा धन, पद, घर, कुटुम्ब तथा अधिकार हमारी नकली पहचान है।

स्वयं को इन उपाधियों से, कर्मों और आपसी सम्बन्धों से निकाल कर क्या हमने कभी स्वयं को देखने का विचार किया है। क्या कभी अपने असली 'मैं' का अनुभव किया है। भगवद्गीता और उपनिषद् संकेत करते हैं कि यह शरीर आपका क्षेत्र है। इसी में रहकर

आप आपको जान सकते हैं। इन्द्रियां, मन, बुद्धि उसको जानने में सहायक हो सकते हैं। किन्तु जो बुद्धि से परे है वह ही 'स्व' अर्थात् नित्य चेतन आनन्द स्वरूप अपना–अपना स्वरूप है, वही अनश्वर अमृत का अक्षय स्रोत है। वही प्राण के द्वारा एक जन्म से दूसरे जन्म में अन्तःकरण को साथ लेकर प्रकट और तिरोहित होता रहता है। उसी की जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय–ये चार अवस्थायें हैं। उसी की जीव, ईश्वर, हिरण्यगर्भ और परब्रह्म नामक दशाएँ हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार आप का अपने से भिन्न पदार्थ से जुड़कर अपनी नकली पहिचान बनाने का दुष्परिणाम है।

उसी के कारण आप जन्म लेने वाले, मरने वाले, रोगी, सुखी–दुःखी, पापात्मा और अपुण्यात्मा हो गये हैं। जिस क्षण आपको असली 'मैं' का पता लग जायेगा, उसी क्षण आपके जीवन से दैन्य–दुःख और संताप नष्ट हो जायेंगे। लम्बे समय से हम नकली, बनावटीपन में जीने के आदी हो गये हैं। इसलिए हम अपनी पहिचान भूल गये हैं। जैसे शेर का बच्चा भेड़ों के बीच घुल–मिल गया और अपने को भेड़ समझने लगा। एक दिन एक शेर आ गया, उसने बच्चे को पहचान लिया और उससे कहा कि तुम भेड़ों के झुण्ड में कैसे? तुम तो शेर के बच्चे हो। शेर का बच्चा भ्रमवश अपने को भेड़ का बच्चा समझे हुए था। वह शेर की बात मानने को तैयार नहीं हुआ तो शेर उसे एक जलाशय के समीप ले गया और उसे जल में अपना तथा शेर का प्रतिबिम्ब देखने को कहा। फिर अपनी आवाज से उसकी साम्यता का ज्ञान कराया, प्रत्यक्ष अनुभव होने पर भेड़ का बच्चा मानने वाले का भ्रम नष्ट हो गया और वह शेर के साथ जंगल की ओर चल पड़ा।

कभी प्रभु कृपा से ऐसा ही संयोग हमारे जीवन में भी आ जाए और कोई समर्थ सिद्ध गुरुदेव कृपा कर हमें हमारा स्वरूप ज्ञान करा दें तो हमारा प्रकृति–जन्य कर्त्तव्य अभिमान का भ्रम उसी प्रकार नष्ट हो जायेगा, जिस प्रकार अन्धकार में रस्सी में भ्रमवश प्रतीत होने वाला सर्प–भय। प्रकाश होने पर अधिष्ठान के सम्यक् ज्ञान से सर्प भय निवृत्त हो जाता है। रस्सी का वास्तविक स्वरूप जो पहले था वही ज्ञात हो जाता है। संशय और भ्रम की निवृत्ति यथार्थ बोध से हो पाती है। यथार्थ बोध शुद्ध अन्तःकरण द्वारा संभव है। ध्यान और मन्त्र जप से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। ध्यान और गुरुदेव प्रदत्त मंत्र से अन्तःकरण में निज–स्वरूप के सम्बन्ध में जो विस्मृति है वह दूर होने लगती है। बुद्धि जब तक विषयेन्द्रियों के संयोग से ज्ञान प्राप्त करती है, तब तक अयथार्थ ज्ञान होगा। जब बुद्धि स्थिर हो जाए, निष्कम्प दीप की लौ की तरह एकाग्र हो जाए तो आत्मा का नित्य शुद्ध युक्तस्वरूप प्रतिबिम्बित होने लगता है। समाधि से बुद्धि स्थिर होती है, उसमें

चिद्–विशिष्ट का परिज्ञान होता है। समाधि भावना दृढ़ होने पर अपनी पुरानी भूलों और गलतफहमियों का अहसास होने पर संस्कार क्षय और वासनाक्षय तथा मनोनाश होने पर असली 'मैं' का रूप प्रकट होता है। योगेश्वर श्रीकृष्ण कहते हैं–''अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशय स्थितः।'' वह परमात्मा शुद्ध 'अहं' के रूप में सभी प्राणियों के अन्दर समाविष्ट होकर प्रकृति के गुणों के साथ कर्त्तृव्य भोक्तृत्व भावापन्न हो गये हैं। ''विमूढ़ा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः''। जिनकी बुद्धि पर अज्ञान और अविद्या तथा माया का पर्दा पड़ा हुआ है वे उस अविनाशी अमृतमय आत्मा को नहीं देख पाते। जो श्री सद्‌गुरु कृपा से आज्ञाचक्र के ऊपर ध्यानस्थ हो जाते हैं वे देह बुद्धि के अज्ञान से निकल कर शुभ ज्योतियों के आश्रयभूत आत्मप्रकाश का दर्शन कर जन्म–मरण के चक्र से परे हो जाते हैं।

योग प्रक्रिया के बिना ज्ञान की उपलब्धि नहीं होती। वाल्मीकि रामायण में पुरुषोत्तम श्री राम और मारुतिनन्दन रुद्रावतार श्री हनुमान जी के मिलन–प्रसंग में असली और नकली पहिचान का अन्तर प्रकट हुआ है। पुरुषोत्तम श्रीराम श्री हनुमान से उनका परिचय पूछते हैं। उत्तर में श्री हनुमान कहते हैं–

देह दृष्ट्या तु दासोऽस्मि,
जीव दृष्ट्या त्वदंशकः।
वस्तुस्तु त्वमेवाहमिति,
मे निश्चिता मतिः।।

हे प्रभु! यदि शरीर दृष्टि से मेरा परिचय पूछते हो तो मेरा निवेदन है कि आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका सेवक हूँ और यदि जीव दृष्टि (अन्तःकरण प्रतिबिम्बित चैतन्य) से मैं आपका अंश हूँ। आप मेरे अंशी हैं। यदि समाधि प्रज्ञा के स्तर का स्थिर बुद्धि से मेरा परिचय चाहिए तो मैं आपका ही स्वरूप हूँ। आपका और मेरा अभेद सम्बन्ध है।

जब तक जीव का अज्ञान–जन्य अहंभाव विगलित नहीं होगा, तब तक उसका सत्य स्वरूप माया के आवरण से ढका रहेगा। साधना का कार्य जीव के अहंकार को विगलित करना है। श्री गुरुदेव प्रदत्त चैतन्य मन्त्र के जप से साधक अपने नकली अहं को असली ''मैं'' में विसर्जित करता है। उस असली 'मैं' का अपरनाम 'सः' है। उपनिषद् का ऋषि उद्‌घोष करता है–''योऽसौआदित्ये पुरुषः सोऽहमस्मि''। अर्थात् जो संसार के तेजस्वी सूर्यादि पदार्थों में आभाषित पुरुष है वही 'मैं' हूँ। मन्त्र–जप से अपने विस्मृत रूप को बुद्धि बोध द्वारा बार–बार याद करता है, धारण करता है। जब तक वह मन्त्र जप जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति–सभी अवस्था में प्रकट नहीं होता, तब तक अपनी पहिचान में भूल हो सकती है।

जब मन्त्र मन में, प्राणों में तथा बुद्धि में रचपच जाये, तब समझना चाहिए कि अपना वास्तविक स्वरूप समझ में आ गया।

यदि अपना निज बोध हो जायेगा तो सांसारिक सम्बन्धों तथा पद–पदार्थों के बिछुड़ने पर रोना और व्याकुल होना रुक जायेगा। पदार्थों के लिए जब तक भाग–दौड़ जारी है, तब तक आत्म ज्ञान नहीं होगा। पदार्थों की चाह में रोने से दुःख की अग्नि में झुलसना पड़ेगा, किन्तु अपनी तलाश में रोने वाला परमात्मा को पा जाता है। पदार्थों की कामना नकली 'मैं' करता है और असली 'मैं' अपने अलावा किसी दूसरे की कामना ही नहीं करता। किसी फकीर ने असली 'मैं' को पाने का उपाय सरल शब्दों में बताया है–

उसको खोजते–खोजते खुद खो गया मैं।
जिसे खोजता था वही हो गया मैं।।

संसार के पीछे भागने वाला या संसार से दूर भागने वाले को अपना पता नहीं मिल पाता। जो भाग–दौड़ छोड़कर रुक जाता है, आसन स्थिर कर जितश्वास होकर कूटस्थ में ध्यान लगाता है, उसे अपना परिचय आप ही मिल जाता है। देह और गेह के कारण नाना सम्बन्धों का ताना–बाना बुन जाता है। 'मैंपन' और 'मेरापन' यही जड़–चेतन की ग्रन्थि है। अपने शरीर मन और प्राणों से भी 'मैंपन' को निकाल देने पर अपना असली रूप प्रकट होने लगेगा। गीता में भगवान् ने इस त्याग का उपाय बताया–''मयि चानन्य योगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।'' अर्थात् हर क्षण ऐसा भाव बनाना कि जो कुछ मेरे पास है अथवा जो कुछ भी मेरे अन्दर है, वह सब परमात्मा का है और परमात्मा ही है। इस प्रकार के भाव का दृढ़ अभ्यास होने पर चित्त शान्त हो उठेगा। उसके उद्वेग शान्त हो जायेंगे। शान्त चित्त अपनी सही पहचान करा देगा। हम अपने कर्त्तव्य की दुहाई दिये जा रहे हैं।

पहले हम अपने को ठीक–ठीक पहिचान लें तभी अपना कर्त्तव्य निश्चय कर उसका पालन कर सकेंगे। अपने को जाने बिना कर्त्तव्य पालन करना क्या सम्भव हो सकता है? बहुत से प्रवचन सुनने से तथा सद्ग्रन्थों का अध्ययन करने से यदि आपने यह जान लिया कि परमात्मा नित्य शुद्ध चेतन, सच्चिदानन्द स्वरूप है, उससे आपकी क्या तृप्ति होगी? जब यह जान लिया जायेगा कि मैं ही आनन्दस्वरूप चिदघन परमात्मा हूँ, तभी वास्तविक तृप्ति होगी। जब तक हमारा सम्बन्ध नकली 'मैं' के साथ रहेगा, तब तक हमारी सीमायें रहेंगी। हमारी शक्ति और सामर्थ्य अल्प रहेगी, किन्तु असली 'मैं' अर्थात् शुद्ध आत्मा के साथ जुड़ने पर हमारी शक्ति और सामर्थ्य असीमित हो जायेगी।

यदि हम विचार के स्तर पर परमात्मा के साथ जुड़ने का प्रयत्न करेंगे तो हमारी समस्या ज्यों की त्यों रह जायेगी, क्योंकि आत्मानुभूति के लिए निर्विचार अवस्था में जाना होता है। विचार, मन और बुद्धि की प्राणों के साथ मिलकर क्रियाशील अवस्था का नाम है। समाधि चेतना के द्वारा हमें अपनी असली 'मैं' की पहिचान होगी। चित्त जब राग–द्वेष से पूर्णरूपेण निर्मुक्त होकर शान्त हो जायेगा, तभी समाधि चेतना का आविर्भाव होगा। समाधि–चेतना अतीन्द्रिय चेतना है। न वह मूर्च्छा है और न कल्पना की तरंग अथवा जाग्रत अवस्था की तरह इन्द्रियों का पदार्थ बोध। अतीन्द्रिय चेतना ही जड़–चेतन में सर्वत्र व्याप्त है। इसकी अनुभूति होने पर सब कुछ जाना जाता है। उस चेतना के द्वार खुलने पर पढ़ने और सुनने के बिना ही सब प्रकार का ज्ञान प्रस्फुटित होता है। परिस्थितियाँ सदा अनुकूल नहीं रह पातीं। प्रकृति के परिणाम अपने वश में नहीं हैं, किन्तु अपने आपकी पहिचान हो जाने पर हम बाह्य परिस्थितियों के अनुकूलन के चक्कर में पड़कर परिस्थितियों से सदा अप्रभावित और अविचल रह सकते हैं।

यदि हमें अपने अन्दर चेतन का अनुभव हो जायेगा, तो हमारा व्यवहार बदल जायेगा। जब तक हम अपनी पहिचान केन्द्र से बाहर परिधि में बनाये हुए हैं, तब तक हम बेहोशी में जी रहे हैं। चेतन की अनुभूति होने पर हमारा जीवन पूर्ण जागृति में हो जायेगा। उसके परिणामस्वरूप हम जड़ के साथ भी चेतन जैसा व्यवहार करने लगेंगे अन्यथा प्राणियों के साथ भी वैसा हो जायेगा मानो वे जड़ पदार्थ हों।

माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर।
कर का मनका छांड़ि के, मन का मनका फेर।।

—सन्त कबीर

गंगापुर सिटी में बही योग की गंगा

योग योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की परम करुणा कृपा से योगी डा. दासलाल जी महाराज के परम सानिध्य में पाँच दिवसीय सिद्धयोग शिविर का आयोजन दिनांक 28 दिसम्बर से 1 जनवरी तक चला। योग का कार्यक्रम पूर्ण रूप से व्यवस्थित था, प्रातः 5 बजे आरती उसके उपरांत ध्यान, जीवन तत्व साधन योगासन, प्राणायाम सभी श्री आचार्य जी के कुशल मार्ग दर्शन में होते थे। 9 बजे गुरुदेव की दिव्य आरती, गीता पाठ, गीता पर सार प्रवचन, सायं 4 बजे से भजन, संकीर्तन, योग पर व्याख्यान एवं रात्रि में श्री प्रभुजी की दिव्य आरती, 5 दिन में गीता के 18 अध्यायों के पाठ के साथ–साथ श्री मद्भगवत् गीता के गूढ़ रहस्यों को श्री आचार्य जी ने सरल शब्दों में समझा कर सभी के हृदय में उतार दिया। आचार्य जी ने श्री प्रभुजी की दिव्य लीलाओं एवं उनके योग ऐश्वर्य का अद्भुत वर्णन करके बतलाया कि हमारे प्रभुजी कितने शक्ति सम्पन्न थे। पतंजलि के अष्टांग योग को विस्तार पूर्वक समझाने के साथ–साथ बतलाया कि हमारे आश्रम की पद्धति ध्यान योग की पद्धति है। जिसके करने से परमात्मा को पा जाओगे ब्रह्म को पा जाओगे, ध्यान की कला को गीता के माध्यम से, शिव के ग्रंथ के माध्यम से सरल शब्दों के द्वारा समझाया। जिस प्रकार हमारे गुरुदेव ध्यान योग पर बल दिया करते थे उसी परम्परा को श्री आचार्य जी भी ध्यान योग करने के लिए शिष्यों से। इस अमर विद्या को करने के लिए कहा करते हैं। आचार्य जी का संदेश था कि यदि हमारा ही जीवन नहीं सुधरा तो हम समाज को क्या सुधारेंगे। भगवान का जो स्वरूप है वही जीव का है। परमात्मा, आत्मा एक ही है इसलिये सभी को योग के दिव्य सिद्धान्तों को समझ कर अपने स्वरूप को पहचानें उसी में सभी का कल्याण है।

प्रतिदिन विविध प्रकार के कार्यक्रम हुये जिसमें संवाई मण्डल, बनारस, हरियाणा, गंगापुर सिटी, आदि स्थानों से आये गुरु भाईयों ने प्रभुजी, गुरुजी के सुन्दर–सुन्दर भजनों की प्रस्तुति दी। योग शिविर में दूर दराज से आये हजारों गुरुभाई सम्मिलित हुये। हरियाणा, उत्तरप्रदेश, मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, झारखण्ड, उत्तराखण्ड, पंजाब, दिल्ली, आदि स्थानों से गुरुभाई कार्यक्रम में उपस्थित हुये। कई वरिष्ठ गुरुभाई हरीसिंह जी

सत्यप्रकाश शास्त्री जी, चन्दन सिंह जी भी सम्मिलित हुये एवं गुरुदेव के योग ऐश्वर्य एवं योग लीलाओं पर प्रकाश डाला।

31 दिसम्बर को प्रातः 9 बजे से योगी डॉ. दासलाल जी महाराज के जन्मोत्सव पर प्रतिवर्ष की भाँति श्री प्रभुजी एवं गुरुदेव की भव्य शोभा यात्रा नगर के प्रमुख मार्गों से निकाली गयी जिसमें विशाल जन सैलाब उपस्थित हुआ। शोभा यात्रा का मनोरम दृश्य देखने लायक था। सभी गुरुभाई मस्तक पर अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय-जय के संकीर्तन गाते जा रहे थे। महिलायें भी किसी से पीछे नहीं थीं वह भी संकीर्तन गाते हुये प्रभुजी की भक्ति में लीन थीं। बैंड-बाजों की मधुर भजनों की ध्वनि कानों में गूँज रही थी। शहर में जगह-जगह प्रभुजी के पूजन के साथ-साथ श्री आचार्य जी का फूल मालाओं से भव्य स्वागत हुआ। रास्ते में सभी का जगह-जगह दूध, मिष्ठान, फल से स्वागत किया गया। शोभायात्रा का दोपहर 1 बजे योगाश्रम पहुँच कर समापन हुआ। 31 दिसम्बर रात्रि को योगी डॉ. दासलाल जी महाराज का जन्मोत्सव मनाया गया एवं श्री आचार्य जी ने सभी गुरुभक्तों, बच्चों, व्यापारियों, किसानों को अपने-अपने क्षेत्र में उन्नति करने के लिए शुभकामनायें प्रदान की एव सभी को आशीर्वाद वचन दिये। उसके उपरांत भरपूर प्रसाद वितरण किया गया।

गंगापुर निवासी श्री मुरारी भारती जो वर्तमान में डेनमार्क में भारतीय संस्कृति एवं कृष्ण भक्ति से ओत-प्रोत प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। डेनमार्क से आकर श्री आचार्य जी के जन्मोत्सव पर कृष्ण की लीलाओं का नृत्य के माध्यम से सभी का मन मोह लिया श्री आचार्य जी शाल श्री फल प्रसाद भेंट कर सभी का सम्मान किया।

श्री सीताराम जी का भी सुन्दर शास्त्रीय संगीत का गायन हुआ।

दिनांक 1 जनवरी को विशाल भण्डारा हुआ। सभी ने प्रसाद ग्रहण किया और अपने-अपने स्थानों के लिये रवाना हुये। दिनांक 2 जनवरी को श्री आचार्य जी को संवाई धाम के लिये भावभीनी विदाई दी गयी।

सिद्धयोग शिविर दतिया समाचार

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी पीताम्बर पीठ माँ बगलामुखी की पवित्र नगरी दतिया म. प्र. में योग योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज एवं सद्गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की करुणा कृपा से तीन दिवसीय दिव्य सिद्धयोग साधना शिविर का आयोजन सिद्धगुफा संवाई आश्रम के आचार्य योगी डॉ. दासलाल जी महाराज के परम सानिध्य में हुआ। योग शिविर में श्री वीरेन्द्र स्वरूप ब्रह्मचारी अम्बाला की भी विशेष उपस्थिति रही इसके अलावा, इन्दौर, मुरैना, ग्वालियर, झाँसी, बनारस, गंगापुर सिटी, रोहतक एवं संवाई के गुरु भाईयों की उपस्थिति रही। निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार प्रतिदिन प्रातः 5 बजे मंगला आरती उसके उपरांत एक घण्टे का ध्यानाभ्यास, 6.30 बजे जीवनतत्व साधन एवं योगासन यह सभी कार्यक्रम श्री आचार्य जी के यौगिक संरक्षण में हुआ करते थे।

7.30 बजे से प्राणायाम, बन्ध, मुद्रायें एवं होम्योपैथिक द्वारा बीमारियों का इलाज श्री वीरेन्द्र स्वरूप जी के संरक्षण में सम्पन्न होते थे।

प्रातः 9.30 बजे श्री प्रभु जी की दिव्य आरती, श्री मद्भगवत् गीता पाठ एवं गीता जी पर सार प्रवचन एवं योग के गूढ़ रहस्यों को श्री आचार्य जी द्वारा बड़े ही सुन्दर सरल शब्दों में समझाया गया। सायं अपने व्याख्यान में अष्टांग योग के साथ संप्रज्ञात, असंप्रज्ञात समाधि के गूढ़ रहस्यों को योगदर्शन, गीता, उपनिषद् के माध्यम से सुन्दर सरल शब्दों में समझाया। हमारे गुरुदेव योगीराज चन्द्रमोहन जी महाराज अपने व्याख्यान में ध्यान योग पर विशेष बल दिया करते थे। जिसके अभ्यास से मनुष्य अपने निज स्वरूप को पहचान सकें एवं अपने जीवन को प्रभु चरणों में लगाकर सार्थक बना सकें। इसी परम्परा का निर्वहन करते हुये सिद्धगुफा संवाई आश्रम के आचार्य योगी डॉ. दासलाल जी महाराज भी ध्यान योग की पद्धति का प्रचार प्रसार करते आ रहे हैं।

सायं काल 4 बजे से प्रभु रामलाल संगीत विद्यालय के छात्र/छात्राओं द्वारा प्रभुजी, गुरुजी के सुन्दर-सुन्दर भजनों की प्रस्तुति होती थी। संगीत शिक्षक विजय शंकर भट्ट के निर्देशन में भजन होते थे। 4 दिसम्बर को ख्याति प्राप्त शास्त्रीय संगीत के कलाकार श्री समीर भालेरावकर ने प्रभुजी के दरबार में अपनी प्रस्तुति दी। इसके अलावा विनोद प्रोहित, माधव प्रोहित, अशोक गोस्वामी, नीरज नयन पाठक, सुनील दुबे एवं बनारस से आये मिन्टू जी ने अपने गुरुदेव के सुन्दर भजन सुनाये प्रतिदिन सायं संगीत के उपरांत

आचार्य द्वारा योग पर व्याख्यान होते थे। अपने व्याख्यान में गीता, योग दर्शन, उपनिषद के माध्यम से योग के सिद्धान्तों को सरल शब्दों में समझाया गया। श्री वीरेन्द्र स्वरूप जी द्वारा भी योग की महिमा को बताया गया कि योग के द्वारा भी अपने जीवन को किस प्रकार सार्थक बनाया जा सकता है।

अंतिम दिन अनिल दुबे द्वारा लिखित पुस्तक 'हमारे गुरुदेव' का श्री आचार्य जी ने विमोचन किया। सभी भजन गायकों को श्री आचार्य जी ने प्रशस्ति पत्र एवं पुरस्कार वितरण किये। सिद्धयोग साधक मण्डल के कार्यकर्ता निखिल चौरसिया, प्रदीप शुक्ला, जे. पी. श्रीवास्तव, अच्युत शुक्ला, विनोद जोशी, विशाल सूरज, मोहित दरोगा आदि ने पूर्ण मनोयोग के साथ कार्यक्रम में सहयोग किया।

अन्त में श्री चन्दन सिंह बाबू जी ने बाहर से आये गुरु भाईयों एवं स्थानीय गुरु भाईयों का कार्यक्रम में सहयोग के लिये धन्यवाद ज्ञापित किया। उसके बाद विशाल भण्डारे में सभी ने गुरुदेव का प्रसाद ग्रहण किया। 7 दिसम्बर को श्री आचार्य जी को ब्रह्ममुहूर्त में भावभीनी विदाई की गयी।

प्रातः 6 बजे आचार्य जी ग्वालियर के लिये रवाना हुए जहाँ दो दिवस दिव्य योग शिविर का आयोजन श्री प्रदीप द्विवेदी के निवास पर हुआ। प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष गुरु भाईयों की उपस्थिति एवं योग जिज्ञासु श्री आचार्य के व्याख्यान सुनने के लिये उपस्थित हुये। ग्वालियर के उच्च कोटि के कलाकारों द्वारा गुरुदेव के सुन्दर भजनों को सुनाया गया। नित्य गीता पाठ के साथ–साथ योग पर व्याख्यान हुये। श्री आचार्य के जितने भी योग शिविर कार्यक्रम होते हैं उनका एक ही संदेश होता है। नित्य गीता पाठ करना एवं ध्यान अभ्यास करना। इसी से जीवन में परमानन्द की प्राप्ति हो सकेगी। 8 तारीख को सभी ने भण्डारे में प्रसाद ग्रहण किया। 9 दिसम्बर को प्रातः आचार्य जी की विदाई की गयी।

पाप कर्मी खुशहाल क्यों देखे जाते हैं ?

डॉ. जे. पी. शर्मा, कृषि उपनिदेशक सेवा निवृत्त, पौण्टा साहिब।

अक्सर लोग कहते सुने जाते हैं कि अमुक आदमी बड़ा पापी, झूठा तथा धोखेबाज है फिर भी बड़े आराम का जीवन जी रहा है। ऐसे दुनिया में अनेकों उदाहरण देखे जा सकते हैं। इसके विपरीत पुण्य कर्मी, पूजा पाठ करने वाले अक्सर दु:खी जीवन जीते देखे जाते हैं। यह सब अपने–अपने कर्मों का फल भोग रहे होते हैं। कर्मों का फल किसी को प्रत्यक्ष नहीं जान पड़ता। इसी कारण मनुष्य हैरान–परेशान है। कर्मों की गति बड़ी महान है।

भगवान वेद व्यास जी जीवों की गति तथा उनकी बोली जाने वाली भाषा समझते थे। भगवान व्यास जी कहीं जा रहे थे कि रास्ते में उन्होंने एक कीड़े को बड़े वेग से भागते हुये देखा। व्यास जी ने कौतूहलवश कीड़े से पूछा, इतनी तेजी से आप क्यों भाग रहे हो? कीड़े ने उत्तर दिया–मुनीश्वर! एक रथ बड़ी तेज गति से इधर को आ रहा है। कहीं वह रथ मुझे कुचल न दे, इस कारण तेजी से भागा जा रहा हूँ।

भगवान व्यास ने कीड़े से कहा–मनुष्य यदि मृत्यु से भय करे तो उचित है, परन्तु तुम कीट के इस शरीर को छोड़ने से भय क्यों कर रहे हो। इस पर कीड़े ने कहा, मुनीवर मुझे मृत्यु से भय नहीं है। भय केवल इस बात का है कि कीड़े से भी अधम लाखों योनियाँ हैं। मैं इस कीड़े के शरीर की मृत्यु के बाद उन नीची–अधम योनियों में न चला जाऊँ।

ऋषि वेदव्यास जी ने कीड़े को विश्वास दिलाया कि तुम भय मत करो! मैं जब तक तुम्हें ब्राह्मण शरीर में न पहुँचा दूँगा तब तक अधम योनियों से तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा। व्यास जी से आश्वासन मिलने से कीड़ा फिर रास्ते में लौट आया और रथ के नीचे आकर उसने प्राण त्याग दिये। कहते हैं कर्मगति टारे नाहि टरे!

अब क्या था? वह कीड़ा पुन: कौए, सियार, आदि योनियों में जब–जब उत्पन्न हुआ, तब–तब स्वामी व्यास जी ने जाकर उसे पूर्व जन्मों का स्मरण कराकर उन–उन योनियों से शीघ्र अति शीघ्र छुटकारा दिलाया। इस प्रकार विभिन्न योनियों में जन्म लेता हुआ क्रमश:

साही, गोहा, मृग, पक्षी, मछली, चाण्डाल, शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय जाति में पैदा हुआ। तब भी भगवान व्यास जी महाराज ने उसे दर्शन दिये। वहाँ वह प्रजापालक रूप में धर्म का आचरण करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ तथा रणभूमि में शरीर त्यागने के फलस्वरूप उसे ब्राह्मण शरीर प्राप्त हुआ। जब उसकी आयु पाँच की हुई तब व्यास जी ने जाकर उसके कानों में सारस्वत मन्त्र का उपदेश कर दिया। मंत्र के प्रभाव से बिना पढ़े ही उसे सम्पूर्ण वेद, शास्त्र तथा धर्म का ज्ञान प्राप्त हुआ।

नन्दभद्र को शंका थी कि पापी मनुष्य भी सुखी क्यों रहते हैं? इसी का समाधान खोजने के लिये वह बहूदक तीर्थ पर तपस्या कर रहे थे। अतः नन्दभद्र की शंका का समाधान, उस सिद्ध सारस्वत बालक ने इस प्रकार किया–

जो मनुष्य पूर्व जन्मों में तामस भाव से दान करते हैं उन्हें वर्तमान जन्म में उन दानों का फल प्राप्त हुआ करता है। परन्तु तापस भाव से जो धर्म–दान किया जाता है, उसके फलस्वरूप लोगों का धर्म में अनुराग–प्रेमभाव नहीं होता। इस कारण वे मनुष्य पुण्य फल को भोगकर अपने तामसिक भाव के कारण नरक में ही जाते हैं। इसमें संदेह नहीं है। कुछ विचारणीय तथ्य इस प्रकार हैं–

1. एक मनुष्य ऐसा है जिसके लिये इस लोक में सुख के सब साधन सुलभ हैं, परन्तु परलोक में नहीं।
2. दूसरा मनुष्य ऐसा है, जिसके लिये परलोक का सुख का भोग सुलभ है परन्तु इस लोक में नहीं है।
3. तीसरा ऐसा है जिसके लिये इस लोक और परलोक दोनों में सुख प्राप्त हैं।
4. चौथा ऐसा मनुष्य है जिसे न इस लोक में और न परलोक में सुख प्राप्त है।

इसलिये जिनका पूर्वजन्म का किया हुआ पुण्य शेष होता है उसे भोगते हुये, सुख में होने के कारण इस जन्म में और पुण्य कर्म नहीं करता, उस कर्महीन, भाग्य हीन, बुद्धिहीन मनुष्य को प्राप्त हुआ वर्तमान सुख केवल इसी जन्म तक रहता है अर्थात् भोगता है।

जिन्होंने पूर्वजन्मों में कोई पुण्य कर्म नहीं किये किन्तु पूजा, पाठ तथा तपस्या करके पुण्य कर्म कर रहा है, उस बुद्धिमान को परलोक में अवश्य ही सुखभोग मिलेगा।

जो पिछले जन्मों में किये पुण्य कर्मों का सुख भोगते हैं तथा इस जन्म में भी नये–नये पुण्य कर्म कर रहे होते हैं, ऐसे बुद्धिमान मनुष्य इस लोक तथा परलोक दोनों में सुख भोग रहे होते हैं।

जिन मनुष्यों के पिछले जन्मों के पुण्य अर्जित नहीं होते तथा इस वर्तमान जन्म में

भी वे पुण्य कर्म नहीं करते, ऐसे लोगों को न इस लोक में और न ही परलोक में सुख प्राप्त होता है। ऐसे लोग सदैव दीन–हीन होकर ही जीवन व्यतीत करते हैं।

नन्दभद्र को समझाकर उस ब्राह्मण शरीर धारी कीड़े ने अपना सारा हाल सुनाया। इतने पर भी उसने सात दिनों तक निराहार व्रत रखा तथा सूर्यमंत्र का जप करता रहा। तत्पश्चात् उसने बहूदक तीर्थ में ही अपना शरीर त्याग दिया। नन्दभद्र ने उसके शरीर का विधिपूर्वक दाहसंस्कार किया। उसकी अस्थियाँ वहीं सागर में प्रवाहित कर दीं। अगले जन्म में वह मैत्रेय मुनि के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने पुण्य कर्मों के प्रभाव से उत्तरोत्तर विकास कर सकता है जैसे इस शरीरधारी कीड़े ने अपना उत्तरोत्तर विकास कर लिया। इसीलिये कहा जाता है कि मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं ही निर्माता है।

सद्गुरु चरणों में प्रणाम।

सूचना

सिद्धयोग के सभी ग्राहकों को सूचित किया जाता है कि आपका वर्ष 2017 का शुल्क मार्च अंक के साथ ही समाप्त हो गया है। अतः अगले वर्ष के लिए आप 180 रु. व्यवस्थापक सिद्धयोग के नाम से प्रेषित कर अगले वर्ष के लिए ग्राहक संख्या सुनिश्चित कर लें ताकि अप्रैल से आप को पत्रिका भेजी जा सके। अपने डाकखाने का पिन कोड अवश्य ही लिखें। जय गुरुदेव!

व्यवस्थापक
सिद्धयोग मासिक
श्री सिद्ध गुफा सवाई
आगरा

ईश्वर प्रणिधान अथवा भक्तियोग

श्री पूर्णचन्द शास्त्री

ईश्वर प्रणिधान योग प्राप्ति का एक उत्कृष्ट तथा सुगम मार्ग है। यह वह साधन है जो कि सब साधनों से सरलतम तथा सभी प्रकार के साधकों के लिए कल्याणकारी है। ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है–अनन्य शरणगति, शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण, अन्तःकरण, आदि सब बाह्य तथा आभ्यन्तर कारणों, उनसे होने वाले सभी कर्मों और उनके फलों को अर्थात् अपने सारे जीवन को ईश्वर को समर्पण कर देना, ईश्वर ही मेरे सर्वस्व हैं, वे ही मेरे प्राणाधार, माता–पिता बंधु तथा सखा हैं, वे मेरे हैं और मैं उनका हूँ–इस प्रकार का दृढ़ निश्चय रखते हुए हर स्थिति में प्रसन्नचित्त एवं सन्तुष्ट रहना तथा अपने इष्टदेव का हर क्षण चिन्तन करते रहना और अपने गुरु–मन्त्र का अधिकाधिक जाप करना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।

ईश्वर सब जीवों के परम आश्रय, परम सखा एवं आहैतुक कृपालु हैं। जो व्यक्ति सच्चे हृदय से उनकी शरण ले लेता है उसका पूरा भार वे दयासागर स्वयं उठा लेते हैं। भगवान ने स्वयं अपने मुखारबिन्द से इस बात को स्वीकार किया है–

सकृदेव प्रपन्नाय
तवास्मीति याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यः
ददाम्येतद् व्रतंमम्।

(वाल्मीकि रामायण)

जो मनुष्य 'हे प्रभो! मैं आपका हूँ' इस भाव से केवल एक बार भी अपने को सब ओर से मेरे अर्पण कर देता है, उस सच्चे हृदय से प्रार्थना करने वाले भक्त को अपनाकर मैं उसे सम्पूर्ण प्राणियों से सर्वथा भयमुक्त कर देता हूँ, यह मेरी प्रतिज्ञा है।

अर्जुन को भक्तियोग का उपदेश करते हुए अखिल लोकनायक श्रीकृष्ण ने भी इस बात की घोषणा की है कि जो साधक मेरी अनन्य शरण ले लेते हैं उनका योग और क्षेम

मैं वहन करता हूँ।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां
ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां
योग क्षेमं वहाम्यहम्।।

जो अनन्य भक्तजन मुझे परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं उन नित्य-निन्तर मेरा चिन्तन करने वाले पुरुषों का योग क्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ। अर्थात् उनसे मैं भगवत्स्वरूप की प्राप्ति करा देता हूँ और भगवत्प्राप्ति के निमित्त किये गये उनके साधन की रक्षा भी मैं स्वयं करता हूँ।

''ईश्वर प्रणिधान'' अष्टाङ्गयोग का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके बिना योगमार्ग में विशेष प्रगति नहीं हो सकती। क्योंकि योग-मार्ग में आने वाले विघ्नों की निवृत्ति ईश्वर प्रणिधान से ही होती है।

योग-दर्शन के साधनपाद में नियमों के अन्तर्गत तथा क्रियायोग के अन्तर्गत ईश्वर प्रणिधान का वर्णन किया गया है तथा उसका फल बताया गया है-समाधि लाभ। जैसे-

समाधिसिद्धिरिश्वर प्रणिधानात्।

अर्थात् ईश्वर प्रणिधान से समाधि सिद्ध होती है।

समाधिपाद में समाधि-प्राप्ति के विविध उपायों का वर्णन करते हुए महर्षि पतञ्जलि-देव जी महाराज ने सूत्र संख्या 23 से 29 तक ईश्वर का लक्षण तथा ईश्वर प्रणिधान का स्वरूप एवं उसका फल बताया है। जैसे-

ईश्वर प्रणिधानाद्वा।

(योग सूत्र 1/23)

ईश्वर प्रणिधान अर्थात् ईश्वर की अनन्य शरणागति से भी निर्बीज समाधि सिद्ध हो जाती है।

तस्य वाचक प्रणवः।

(योग सूत्र 1/27)

उस ईश्वर का नाम 'ओम' है।

तज्जपस्तदर्थ भावनम्।

(योग सूत्र 1/28)

साधक को ईश्वर के नाम का जप करना चाहिये और उसके स्वरूप का चिन्तन करना

चाहिए। जप के साथ अपने इष्ट का स्मरण करते रहना चाहिए। अथवा--

जप श्रान्तः शिवंध्यायेत्–

ध्यान श्रान्तः शिवं जपेत्।

जप के बाद ध्यान करे और ध्यान के बाद जप करे। इससे सभी अन्तरायों की निवृत्ति हो जाती है और साधक का मार्ग प्रशस्त होता चला जाता है। जैसे–

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तद य–भावश्च।

(योग सूत्र 1/29)

ईश्वर के नाम का जप और उसका ध्यान करने से योगमार्ग के सभी अन्तराय दूर हो जाते हैं और परमेश्वर के स्वरूप का ज्ञान हो जाता है।

योग का मुख्य उपाय अभ्यास और वैराग्य साधन तो समाहित चित्त वाले आम अधिकारी ही कर सकते हैं किन्तु विक्षिप्त चित्त वाले मध्यमाधिकारी, जिनका चित्त सांसारिक विषय वासनाओं तथा राग–द्वेष से मलिन है उनके लिए ईश्वर–प्रणिधान ही योग प्राप्ति का एकमात्र साधन है। प्रणिधान अर्थात् अनन्य चिन्तन के प्रभाव से साधक के राग–द्वेष आदि मल दूर हो जाते हैं तथा उसे भोगों से वितृष्णा एवं कर्म–फल में अनासक्ति हो जाती है, जिससे उसका अभ्यास और वैराग्य स्वतः ही सिद्ध हो जाता है।

श्रीमद्भागवद गीता मे ईश्वर प्रणिधान का स्वरूप एवं उसका फल इस प्रकार बतलाया गया है–

मच्चित्ता मत्द्गप्राणा,

बोधयन्तः परस्परम्।

कथयन्तश्च मां नित्यं,

तुष्यन्ति च रमन्ति च।।

तेषां सतत युक्तानां,

भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

ददामि बुद्धियोगं तं,

येन मामुपयान्ति ते।।

अनन्य चिन्तन में अद्भुत शक्ति है, जो व्यक्ति सर्वतोभावेन प्रभु का भजन करता है वह प्रभु में ही मिल जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, श्रीमद्भागवत्पुराण का वचन है–

विषयान्ध्यायतो चिन्त

विषयेषु विसज्जति।

मामनुस्मरतो नित्यं
मय्येव प्रविलीयते।।

विषयों का चिन्तन करने से मन विषयों में ही रचा-पचा रहता है और मुझे परमेश्वर का चिन्तन करते रहने से यह मुझ में ही लीन हो जाता है।

प्रभु चरणों का अनन्य चिन्तन करने वाले ध्यानाभ्यासी तथा गुरु-मन्त्र का अधिकाधिक जाप करने वाले श्रद्धालु साधक उक्त सिद्धान्त की सत्यता को अवश्य स्वीकार करेंगे।

सामान्य जनों को भी अखिलात्मा श्रीकृष्ण के इस वचनामृत पर विश्वास करके साधना-परायण बन जाना चाहिए-

अपि चेत्सुदूराचारो
भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः
सम्याग्व्यवसितो हिं सः।।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा
शश्वच्छान्ति निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न
मे भक्तः प्रणश्यति।।

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी मेरा भक्त होकर अनन्य भाव से मेरा भजन करता है तो वह साधु ही मानने योग्य है। क्योंकि उसने भली-भाँति निश्चय कर लिया है कि ईश्वर भजन के समान श्रेष्ठ कार्य अन्य कुछ नहीं है।

भजन के प्रभाव से वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाता है और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक जान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता।

ईश्वर की शरणागति को ही भक्ति-योग कहा जाता है। भक्ति शब्द की व्युत्पति भज्र धातु से हुई है, जिसका अर्थ है-सेवा! शाण्डिल्य भक्तिसूत्र में भक्ति की परिभाषा इस प्रकार की गई है-''सा परानुरक्तिरीश्वरे'', अर्थात् अपने इष्ट में परम अनुराग होना ही भक्ति है।

भक्ति नौ प्रकार की बताई गई है। जैसे-

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः
स्मरणम् पाद सेवनम्।।

अर्चनं बन्दनं दास्यं
सख्यामात्मं निवेदनम्।।

महापुरुषों से ईश्वर की लीलाओं को सुनना तथा शास्त्रों को पढ़ना, श्रद्धालुजनों के साथ प्रभु का गुणगान करना, ईश्वर का हर समय स्मरण करते रहना, गुरु–चरणों की सेवा करना, प्रभु का मानसिक पूजन, बन्दन, हास्यभाव से उनकी सेवा करना, सख्यभाव से आत्मीयता रखना और समर्पण–भाव अर्थात् प्रणिधान यह नौ प्रकार की भक्ति हैं।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने शबरी को इस नवद्या भक्ति का उपदेश दिया था। यथा–

नवधा भक्ति कहों तोहिं पाहीं।
सावधान सुनु धरु मन माहीं।।
प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।
गुरुपद पंकज सेवा तीसरि भक्ति अमान।
चौथी भक्ति मम गुनगन करइ कपट तजि गान।।
मन्त्रजाप मम दृढ़ विश्वासा।
पंचम भजन सो वेद प्रकाशा।
छठ दम शील बिरति बहु करमा।
निरत निरन्तर सज्जन धर्मा।।
सप्तम सब मोहिमय जग देखै।
मोतें सन्त अधिक कर लेखै।।
अष्टम यथा लाभ सन्तोषा।
सपनेहुँ नहि देखै परदोषा।
नवम सरल सब सन छल हीना।
मम भरोस हिय हरष न दीना।।

(1) संतों का सत्संग करना तथा श्रद्धापूर्वक उनका उपदेश सुनना प्रथम प्रकार की भक्ति है। इसे श्रवण भक्ति कहा जाता है।

(2) ईश्वर की लीला कथाओं में प्रेम रखना तथा उनका गुणगान करना यह दूसरे प्रकार की भक्ति है।

(3) अभिमान को त्यागकर गुरुदेव के चरण कमलों की श्रद्धापूर्वक सेवा करना तीसरे प्रकार की भक्ति है।

(4) निष्कपट–भाव से ईश्वर का गुणगान करना चौथी प्रकार की भक्ति है।

(5) मन्त्र का जप करना तथा अपने इष्ट में दृढ़ विश्वास रखते हुए निरन्तर अनन्य भाव से प्रभु का चिन्तन करना पाँचवीं प्रकार की भक्ति है।

(6) इन्द्रिय दमन, आदर्श व्यवहार, कर्मों में अनासक्ति तथा सज्जनों के धर्म में निरन्तर उत्साह पूर्वक लगे रहना छठी भक्ति है।

(7) सारे संसार को प्रभुमय देखना तथा सन्तों को ईश्वर से भी श्रेष्ठ समझकर उनकी अधिक से अधिक सेवा करना सातवीं भक्ति है। क्योंकि सन्तों का स्थान ईश्वर से भी ऊँचा है। भक्त कबीर का यह कथन ध्यान देने योग्य है।

हरि सों तू जनि हेत कर,
कर हरिजन सों हेत।
माल मुलुक हरि देत है,
हरिजन हरि ही देत।।

(8) अपने पास जो कुछ है उसी में सन्तोष कर लेना तथा स्वप्न में भी दूसरों का दोष न देखना यह आठवीं प्रकार की भक्ति है।

(9) सबके साथ सरल तथा छल रहित व्यवहार करना तथा ईश्वर पर दृढ़ विश्वास रखते हुए किसी भी स्थिति में हर्ष या शोक न करना यह नौंवी भक्ति है।

भक्ति–योग भवसागर को पार करने के लिए एक सुदृढ़ नौका है। प्राणायामादि हठयोग की कष्ट साध्य क्रियायें हर व्यक्ति नहीं कर सकता और न अभ्यास वैराग्य रूप योग साधन सबके लिए सम्भव है। उपरोक्त साधना मे साधक को अपने साधन की चिन्ता रहती है और साधना में प्रगति न होने पर दुःख होता है किन्तु भक्ति–योग में सच्चे हृदय से ईश्वर की शरण ले लेने के पश्चात् उसे कुछ भी करना शेष नहीं रहता। उसका सारा भार वे दयामय 'प्रभु' स्वयं उठा लेते हैं। भक्ति–योगी चिन्ता का भार अपने प्राणाधार इष्टदेव पर छोड़कर स्वयं प्रभु चिन्तन में मग्न रहता है। उसके सभी कार्य ईश्वर की प्रसन्नता के लिए ही होते हैं। अतः उसे कर्मफल की इच्छा नहीं रहती। भक्तियोगी अपनी अनन्य भक्ति के प्रभाव से विपत्ति के पहाड़ को हँसते–हँसते पार कर जाता है। कोई भी भौतिक शक्ति उसका सामना नहीं कर सकती। मीरा तथा प्रह्लाद के पावन जीवन चरित्र इस बात के मूर्तिमान उदाहरण हैं। भगवत् शरणागत भक्त योग की सभी सिद्धियों का स्वामी होता है। राम भक्त हनुमान की योग लीलायें इस बात को सिद्ध करती हैं।

महापुरुषों ने भक्ति की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। मुनिजन भक्ति का ही वरण

करते आये हैं। यहाँ तक कि योगेश्वर भगवान श्री शंकर भी अपने इष्ट उस परम प्रभु से भक्ति का ही वर माँगते हैं। जैसे–

बार बार वर माँगहु हरषि देहु श्रीरंग।
पदसरोज अनपायन भक्ति सदा सत्संग।।

(रा.च.मानस–उ.का.)

बिना भक्ति के राजयोग सिद्ध नहीं हो सकता। अतः योगाभ्यासी साधकों को चाहिए कि वे अपनी साधना में ईश्वर प्रणिधान को अवश्य स्थान दें।

प्रभु कृपा से जिन सौभाग्यशाली साधकों को गुरुदेव की प्राप्ति हो चुकी है उन्हें अनन्य–भाव से गुरुदेव के चरण–कमलों का चिन्तन करते रहना चाहिए तथा गुरुदेव की आज्ञा का पालन करते हुए गुरुमन्त्र का अधिक से अधिक जप करना चाहिए। यदि इतनी साधना हमसे हो जाये तो शेष कार्य वे सर्वशक्तिमान स्वयं पूरा करा देंगे।

जिन्हें अभी गुरुदेव की शरण न मिली हो उन्हें निष्कामभाव से श्रद्धा–भक्ति पूर्वक परमेश्वर को अथवा अपने इष्टदेव को ही गुरु मानकर उनके शरणागत हो जाना चाहिए। वे गुरुओं के गुरु दीन–बन्धु परमात्मा स्वयं ही उनका मार्ग–दर्शन करते रहेंगे।

लोग कहते हैं ''पहले योग्य बनो, फिर इच्छा करो।'' वेदान्त कहता है ''पहले योग्य बनो, इच्छा करने की कोई आवश्यकता नहीं।'' जो पत्थर दीवार में लगाए जाने योग्य है, वह रास्ते में पड़ा हुआ कभी नहीं मिल सकता। यदि तुम परमात्मा के अटल नियम द्वारा अपने में योग्यता उत्पन्न करोगे तो प्रत्येक वस्तु आप से आप तुम्हारी ओर चली आवेगी। जलता हुआ लैम्प पतंगों को बुलाने नहीं जाता, पतंगे स्वयं लैम्प के चारों ओर इकट्ठे होते हैं।

मेरे प्रभुजी

मेरे प्रभुजी संवाई में बुला लोगे तो क्या होगा
मेरे गुरुदेव शरण अपनी लगा लोगे तो क्या होगा

संवाई आके प्रभु जी ने योगलीला दिखाई थी–2
योग गंगा जगत में फिर बहा दोगे तो क्या होगा
मेरे प्रभु जी..........

सेवा कर चन्द्र प्रभु जी ने योग अमृत को पाया है–2
योग अमृत जगत को फिर पिला दोगे तो क्या होगा
मेरे प्रभु जी ....

उजाला योग का देकर तिमिर जग का हटाया है–2
योग ज्योति हमें प्रभु जी दिखा दोगे तो क्या होगा
मेरे प्रभु जी ....

यहाँ गम दूर हो जाते मुरादें पूरी होती हैं–2
नजर रहमत की जो प्रभुजी हमें दोगे तो क्या होगा
मेरे प्रभु जी ....

संवाई धाम में दिन रात शक्ति संचार होता है–2
दीवाना अपने चरणों का बना दोगे तो क्या होगा
मेरे प्रभु जी ....

भक्ति का दान दो प्रभु जी अर्ज हमने लगाई है–2
विजय को चरणों की सेवा प्रभु दोगे तो क्या होगा
मेरे प्रभु जी ....

हमको भी बुला लो धाम संवाई
दर्शन दो प्रभु राम लाल सांई

—विजय शर्मा
सहारनपुर

विशते ब्रह्मधाम

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो
न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वां–
स्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम्।।

सबसे आत्मारूप परब्रह्म परमेश्वर उपासनास्वरूप बल से रहित मनुष्य द्वारा प्राप्त किये नहीं जा सकते। समस्त भोगों की आशा छोड़कर एकमात्र परमात्मा की ही उत्कट अभिलाषा रखते हुए निरन्तर विशुद्धभाव से अपने इष्टदेव का चिन्तन करना – यही– उपासना रुपी बल का संचय करना है। ऐसे बल से रहित पुरुष को वे नहीं मिलते। इसी प्रकार कर्तव्यत्यागरूप प्रमाद से भी नहीं मिलते तथा सात्विक लक्षणों से रहित संयमरूप तप से भी किसी साधक द्वारा नहीं प्राप्त किए जा सकते। किन्तु जो बुद्धिमान साधक इन पूर्वोक्त उपायों से प्रयत्न करता है, अर्थात् प्रमाद रहित होकर उत्कट अभिलाषा के साथ निरन्तर उन परमेश्वर की उपासना करता है, उसका आत्मा परब्रह्म परमात्मा के स्वरुप में प्रविष्ट हो जाता है।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
[illegible]ाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

श्री/सुश्री

अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पुरुषत्वता।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवता दनागसः।।

(ऋग्वेद 4/54/3)

हे [illegible]विता ! आपका जीवन दिव्य गुणों से भरा हुआ है। हम अज्ञानवश या असावधानी के कारण अ[illegible] ; प्रति अपराध एवं श्रद्धा निष्ठा में प्रमाद कर देते हैं। हमारे दुर्बल पुत्र-पौत्रादि अपराध कर देते हैं [illegible]लतः उनके अपराध से हम भी विशेष अपराधी हो जाते हैं। यही क्यों, हम अपनी चतुराई, ऐश्वर्य या [illegible]रुष के मद से अन्य देवों या मनुष्यों के प्रति भी अपराध कर देते हैं। आप उन सब प्रकार के अपराधों क[illegible] क्षमा कर हमें सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दीजिये। हमारी यही अभ्यर्थना है।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा [illegible] लि राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा [illegible] प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासला[illegible]